प्रकाशक
भारतवासी प्रेस
दारागंज—प्रयाग

मूल्य १॥)

सन् १९५०

मुद्रक
पं० प्रतापनारायण चतुर्वेदी,
भारतवासी प्रेस, दारागंज-प्रयाग

देव-रत्नावली

महाकवि देवदत्त का जन्म सम्वत् १७३० में इटावे में हुआ था। कुछ लोग मैनपुरी को इनकी जन्मभूमि बतलाते हैं। इसका कारण यही समझ पड़ता है कि पहिले इटावा और मैनपुरी के जिले सम्मिलित थे। इनके वंशज अब भी कुसमरा गाँव में निवास करते है जो इटावा से मैनपुरी जाने वाली सड़क पर बत्तीसवें मील पर बसा हुआ है। इनके वंश की एक शाखा के लोग इटावे में रहते हैं और दूसरी शाखा के कुसमरा में। ये दुसरिहा कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

सरोजकार ने इन्हें मैनपुरी मण्डलान्तर्गत सयाने गाँव का निवासी माना है, पर उन्होने कोई प्रमाण नहीं दिया। इसके विपरीत देवजी ने स्वयं अपने को इटावा का निवासी कहा है। ऐसी दशा में सरोजकार का मत सर्वथा माननीय नही है।

देवजी में विलक्षण कवि प्रतिभा थी। वे स्वामी हितहरिवंश की सम्प्रदाय के बारह शिष्यों में प्रमुख व्यक्ति थे। इनकी लोकोत्तर कवि प्रतिभा का परिचय इससे मिलता हैं कि इन्होने सोलह वर्ष की अवस्था में 'भाव विलास और अष्टयाम, जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ बनाये थे। इतना ही नही, अष्टयाम को तो औरंगजेब के पुत्र आजमशाह ने बड़ी ही स्नेहार्द्र दृष्टि से देखा था और उसकी प्रशंसा भी की थी। इसे देव का दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि आज़मशाह जैसे आश्रयदाता को पा कर भी वे अन्यमुखापेक्षी बने रहे।

आज़मशाह औरंगजेब के तृतीय पुत्र थे। इनकी अवस्था उस समय लगभग ३६ वर्ष की होगी। ये बड़े ही, वीर, गुणज्ञ और विद्या प्रेमी थे, और साथ ही गुणियों का बड़ा सत्कार भी करते थे। सम्राट औरंगजेब के यह उस समय बड़े कृपापात्र भी

थे। इस कृपा का कारण यह भी था कि सम्राट ने अपने द्वितीय पुत्र मुअज्जम शाह को प्रकारान्तर से राजबंदी बना रक्खा था। देव से आजमशाह की भेंट सम्भवतः दक्षिण में हुई होगी, क्योंकि उस समय वे अपने पिता के साथ दक्षिण में थे और वही पर सेना संचालन करते थे।

विधि विडम्बना वश औरङ्गजेब आजमशाह से रुष्ट हो गया और उसने उन्हे गुजरात का शासक नियुक्त किया। मुअज्जम फिर सम्राट का कृपापात्र हुआ। सम्वत् १७६४ में औरंगजेब की मृत्यु के अनन्तर मयूर सिंहासन के लिये गृहयुद्ध मे आजमशाह मारा गया और देव का सम्बन्ध राज दरबार से छूट गया।

कहते है कि देवजी एक बार भरतपुर नरेश से मिलने गये। उस समय वे डीग दुर्ग निर्माण करा रहे थे। महाराज ने देव का बड़ा सत्कार किया और इन्हे छंद बनाने के लिये आज्ञा दी, परन्तु उन्होंने उस समय छंद सुनाने से निषेध किया और कहा कि 'महाराज इस समय सरस्वती की आज्ञा नहीं है।' परन्तु महाराज ने इनसे छन्द सुनाने का बार बार अनुरोध किया। कहते है कि देव वाक्यसिद्ध कवीश्वर थे। जो कुछ कहते थे वही हो करके रहता था। राजा का अनुरोध मानकर उन्होंने छंद तो सुनाया, परन्तु न जाने कैसे उनके मुख से यह बात निकल गई कि डीग के दुर्ग में सैनिकों के शिर ठुकराते फिरैंगे। कहते हैं कि थोड़े ही दिनों के बाद देव की यह भविष्यवाणी सर्वथा सत्य निकली। देव जी को इसके लिये जो पुरस्कार मिला होगा उसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते है।

देव जितने ही विद्वान थे उतने ही स्वाभिमानी भी थे और इस स्वाभिमान की मात्रा इनमें यहाँ तक चढ़ी हुई थी कि वह इन्हे कहीं जमकर नही रहने देती थी। जहाँ कोई बात इनकी प्रतिष्ठा के अणु-मात्र भी प्रतिकूल हुई कि इन्होंने अपने आश्रय-

दाता को छोड़ा। इसी कारणवंश देवजी को जन्म भर किसी न किसी आश्रयदाता की खोज में रहना पड़ा। राजाओं के आश्रित रहकर भी इन्होंने उनकी अनुचित प्रशंसा नहीं की। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः उन्होंने इनका यथेष्ट आदर ही न किया हो, अथवा सम्राट का आदर प्राप्त करने के अनन्तर इन्हें उनका आदर कुछ जचा न हो।

इनके दो एक ग्रन्थ किसी को समर्पित भी नहीं हैं। आश्रय-दाता की खोज में इन्होंने लगभग भारतवर्ष भर की यात्रा की थी, और वहाँ के निवासियों की गतिविधि का निरीक्षण करके इन्होंने अपने अनुभव के आधार पर 'जाति विलास' नाम के एक ग्रन्थ का निर्माण किया है, जिसमें भारत भर के भिन्न भिन्न देशों की स्त्रियों को नायिका मानकर उनके वेष एवं जीवन का सुन्दर चित्र खींचा है। ये चित्र एक प्रत्यक्ष-दर्शी अनुभव के स्पष्ट प्रमाण हैं।

अन्त में घूमते घूमते देव जी को एक गुणज्ञ आश्रयदाता मिल ही गया। इनका नाम राजा भोगीलाल था। इन भोगीलाल का देव जी ने ऐसा उत्कृष्ट वर्णन किया है जैसा कि इन्होंने किसी आश्रयदाता का नहीं किया था। इन्हीं के लिये देव ने सम्वत् १७८३ में 'रस विलास' नाम का ग्रन्थ बनाया। यद्यपि देवजी इससे पहिले भवानीदत्त, कुशल-सिंह और राजा उद्योत सिंह के यहाँ भी रह चुके थे परन्तु भोगीलाल के आदर के सामने सब को भुला दिया।

खेद का प्रसंग तो यह है कि यहाँ भी देवजी बहुत दिनों तक न रह सके। या तो भोगीलाल से भी इनका वैमनस्य हो गया हो, या उनका शरीरपात हो गया हो, तभी यह वहाँ से चले आये होंगे; क्योंकि इस समय इन्होंने जो 'शब्द रसायन' ग्रन्थ बनाया है वह किसी को समर्पित नहीं है।

इसके उपरान्त देवजी को कदाचित बहुत दिनों तक कोई

आश्रय-दाता नहीं मिला और ये अपने घर पर रहकर ही काव्य रचना करते रहे। अन्त में इन्हे पिहानी निवासी अकबर अली खाँ का आश्रय मिला और इन्होने अपनी समस्त रचनाओ का संग्रह 'सुखसागर तरंग' के नाम से खाँ साहेब को सम्वत् १८२४ में समर्पित किया। इसके बाद उनकी और कोई रचना नहीं मिलती, इससे अनुमान होता है कि देवजी का देहान्त ६४ वर्ष मे सम्वत् १८४० के लगभग हुआ होगा।

देवजी भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त थे और वेदान्त के भी ज्ञाता थे। राधा माधव के शृंगार के व्याज से उन्होने प्रेम सन्देश दिया है। सब से पहिले देव ने ही शृंगार को रसराज माना है। फलतः उनका काव्य शृंगार रस से ओतप्रोत है।

जहाँ देवजी एक उच्चकोटि के साहित्यिक थे वहाँ वे एक अच्छे संगीतज्ञ भी थे। संगीत विद्या का उन्हे अच्छा ज्ञान था। यह बात और है कि वह तानसेन के समान अच्छे गवैये न हो पर वे उसके मर्म को अवश्य समझते थे। दशांग काव्य पर देव ने जैसा डट कर लिखा है वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं लिखा। देवजी अपनी रचनाओं में केशव के समान बरबश अलकार ठूँसने का प्रयत्न नहीं करते थे। उनकी रचना भाव प्रधान होती थी, पर हाँ, अनुप्रास वे अवश्य कुछ टेढ़े मेढ़े रख देते थे परन्तु उनका सुन्दर निर्वाह भी कर लेते थे। यह भी देव की सफलता का एक कारण है।

देव की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा होती थी। उसे टकसाली भाषा कहें तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। वे शब्दो का सस्कार भी कर लिया करते थे और उन्हे ऐसा फिट करते थे कि वे अपने स्थान पर जगमगाने लगते थे।

देव से पहले कविगण काव्यकला के अधिक समर्थक थे। इसका परिणाम यह होता था कि भाषा और अलंकारो के द्वारा

भाव नियंत्रित रहता था और स्वच्छंद गति से न चल पाने के कारण उसका सम्यक रूप से विकास भी नहीं होने पाता था। निष्कर्ष यह कि भाव कला का अनुवर्ती था।

कुछ दिनो के बाद कवियो और आलोचकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ और यह स्थिर किया गया कि कला कौशल भाव को उत्कर्ष प्रदान करने के लिये है उसका नियंत्रण करने के लिये नहीं।

इन दोनो विभिन्न काव्य-प्रणालियो के समर्थक दो प्रतिनिधि हुए। अलंकार प्रणाली के समर्थक कविवर केशवदासजी थे और भाव प्रधानप्रणाली के समर्थक कविवर देव जी।

देवजी का विद्वान मंडली में उस समय बड़ा सम्मान था। इनके समकालीन कवि बड़े आदर के साथ इनका नाम लेते थे। सम्वत् १७९२ में दलपति राय बंशीधर ने अपने 'अलंकार रत्नाकर' नाम की पुस्तक में देवजी के बहुत से छन्दों को उद्धृत किया है। इसी प्रकार सम्वत् १८०३ में आचार्य्य प्रवर भिखारी दास ने भी अपने 'काव्य निर्णय' में देवजी का बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। सम्वत् १८०४ में कविवर सूदन ने भी 'सुजान चरित्र' में देवजी का नाम उल्लेख किया है। १८८७ में प्रतापसाहि ने तो अपने 'काव्य बिलास' में देव के बहुत से छन्दो को उदाहरण स्वरूप दिया है और अन्त में भारतेन्दु बाबू ने अपने 'सुन्दरी सिंदूर' में देव के न जाने कितने सुन्दर छन्द उद्धृत किये हैं। अयोध्याधीश महाराज मानसिंह ने तो अपना उपनाम ही देव रख छोड़ा था। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने इन्हे अपने 'सरोज' में भामह और मम्मट के समान हिन्दी भाषा का आचार्य्य माना है। इसी से देव की महत्ता प्रगट होती है।

देवजी के समकालीन कवियों में उर्दू साहित्य में उस समय औरंगाबाद निवासी कविवर वली का बड़ा नाम था। मराठी

साहित्य में कविवर श्रीधर ललित रचनायें कर रहे थे। गुजराती साहित्य कोष को प्रेमानन्द भट्ट अपनी रचनाओ के द्वारा गौरवान्वित कर रहे थे और हिन्दी भाषा में सुखदेव, कालिदास, वृन्द, नाथ एव उदयलाल की रचनाओ की धूम थी।

देवजी की रचनायें

कुछ लोगो का अनुमान है कि देवजी ने सब मिलाकर ७२ ग्रन्थ बनाये हैं परन्तु कुछ लोग इन्हे ५२ ग्रन्थो का प्रणेता मानते हैं। इनमें से अद्यावधि सब को मुद्रण का सौभाग्य नही प्राप्त हुआ है। देव के हमने बारह ग्रन्थ देखे हैं और इन्हीं के सम्बन्ध में हम अपना मत प्रकट करेंगे। देव के मुद्रित ग्रन्थो की तालिका इस प्रकार है :—

(१) भाव विलास (२) अष्टयाम (३) भवानी विलास (४) रस विलास (५) सुखसागर तरंग (६) सुजान चरित्र (७) राग रत्नाकर (८) प्रेम चंद्रिका (९) देव शतक (१०) जाति विलास। इनके अतिरिक्त 'काव्य रसायन' या 'शब्द रसायन' 'कुशल विलास' 'देव माया प्रपञ्च नाटक' 'पावस विलास' 'वृक्ष विलास' आदि ग्रन्थों का उल्लेख मिश्र बन्धुओं ने अपने विनोद में किया है परन्तु इन्हें अद्यावधि मुद्रण का सौभाग्य नही प्राप्त हुआ। इसे हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य ही कहना चाहिये। 'कुशल विलास' अभी हिन्दुस्तानी अकेडमी में रक्खा हुआ है।

इसके अतिरिक्त देव के तीन संग्रह निकल चुके हैं। सबसे पहिले भारतेन्दु बाबू ने "सुन्दरी सिन्दूर" के नाम से एक संग्रह निकाला जिसमें देवजी के १११ परमोत्कृष्ट छन्दों का संग्रह किया गया। दूसरा संग्रह 'देव ग्रन्थावली' और तीसरा संग्रह "देव सुधा" के नाम से मिश्र बन्धुओं ने प्रकाशित कराया। इसमें २७२ परमोत्कृष्ट छन्दों का संग्रह किया गया है। चौथा संग्रह हमारे मित्र बाबू हरदयाल सिंह ने "देव दर्शन" के नाम से तैयार किया।

प्रस्तुत संग्रह में देव की सभी रचनाओं से २०० चुटीले छन्द छाँट लिये गये हैं। इस संग्रह के जल्दी जल्दी प्रकाशित होने से इस बात का अनुमान किया जाता है कि अब देव की रचनाओं कीओर हिन्दी-साहित्यानुरागियों का विशेष प्रेम है।

"भाव विलास"

यह देवजी की प्रथम रचना है। इसका प्रणयन आपने सोलह वर्ष की अवस्था में सम्वत् १७४६ में किया था। इसके देखने से विदित होता है कि देव की बाल्यकाल की रचनाओं में भी पर्याप्त प्रौढ़ता थी। इसमें आपने शृंगार रस का प्राधान्य रक्खा है और नायिका भेद और अलंकारों का भी वर्णन किया है। इसमें देव ने अपनी विशेषता दिखलाई है। जहाँ अन्य आचार्यों ने ३३ संचारी भावों का वर्णन किया है वहाँ आपने एक "छल" नाम का संचारी और बढ़ाकर उनकी संख्या ३४ कर दी है। इसी प्रकार रस के भी आप ने दो भेद किये हैं "लौकिक और अलौकिक" फिर इनके भी उपभेद किये हैं। लौकिक के शृंगार हास्य आदिक नौ भेद और अलौकिक के तीन भेद, 'स्वप्न, मनोरथ और उपनायक'। शृंगार के भी आपने 'प्रच्छन्न और प्रकाश' दो भेद किये हैं। इसमें आपने केशवदास की प्रणाली का अनुसरण किया है। नायिकाओं के आपने ३०४ भेद माने हैं। यद्यपि बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने इनकी संख्या हजारों पर पहुँचा दी है। देव ने ३६ ही अलङ्कारों का समर्थन किया है। सम्भव है कि इससे पहले के आचार्य इतने के अस्तित्व के समर्थक हों।

"अष्टयाम"

यह देवजी की द्वितीय कृति है। इसकी रचना औरङ्गजेब के पुत्र आजम शाह के लिये सम्वत् १७४६ में की गई थी और उन्होंने इसको बहुत पसन्द भी किया था। ऋतुओं पर लिखने की परि-

पाटी बहुत पुरानी है पर देवजी ने ऋतुओ की कौन कहै प्रत्येक पहर और घड़ी पर छन्द कहे है। कहना न होगा कि यह तत्कालीन राजाओ के मनोविनोद का विलासप्रिय टाइम टेबुल है। समझ में नहीं आता कि इन लोगो के सामने उन दिनो विलासिता को छोड़कर कोई अन्य कार्य्यक्रम था या नही।

"भवानी विलास"

यह देवजी की तीसरी रचना है और भवानीदास वैश्य के नाम पर की गई है। इसका विषय 'रस निरूपता' है।

"सुजान विनोद"

इसमें देवजी ने प्रेम को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। उनका अनुमान है कि जप-तप भी इसकी अपेक्षा हीन है। इसमें 'उद्धव गोपिका' संवाद के विषय मे कुछ छन्द कहे गये है और पटऋतु का वर्णन अच्छा किया गया है।

"प्रेम तरंग"

यह भी नायिकाभेद का ग्रन्थ है और इसकी रचना बड़ी प्रशंसनीय है।

"राग रत्नाकर"

इसका विषय संगीत है। रागो के विषय मे जितनी भी ज्ञातव्य बातें हैं वे सब इसमे दी गई हैं। 'स रे ग म प ध नी' के संगीत के लिये देव ने सूत्र रूप से 'सुरगमे प्यौधनी' का प्रयोग किया है। निष्कर्ष यह कि संगीत सागर को उन्होंने इस ग्रन्थ रूपी गागर में भरकर अपनी सगीत कुशलता का परिचय दिया है।

"कुशल विलास"

इसका विषय नायिका भेद है और यह इटावा मंडलान्तर्गत फफूंद निवासी ठाकुर शुभकरणसिंह के पुत्र कुशलसिंह के नाम पर बनाया गया है। इसकी भी रचना सुन्दर है।

"प्रेम चन्द्रिका"

इसकी रचना मर्दनसिंह के पुत्र उद्योगसिंह वैश्य के नाम पर की गई थी। इसका भी विषय रस निरूपण है और शृंङ्गार रस को विशेषता दी गई है। इसका रसराजत्व देवजी ने भली भाँति प्रतिदान किया है।

"देव चरित्र"

इसमे भगवान कृष्ण की ललित लीलाओ का वर्णन किया गया है। इसके पढ़ने से विदित होता है कि देव को पर्य्याप्त पौराणिक परिज्ञान भी था और यदि वह चाहते तो इसे सुन्दर खण्ड काव्य बना सकते थे पर न जाने क्यो उन्होंने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया।

"जाति विलास"

इसमें देवजी ने भारतवर्ष के समस्त देशो की भिन्न भिन्न जाति की ललनाओ का चित्र खींचा है और यह अपने ठाठ का निराला ग्रन्थ है।

"रस विलास"

इसकी रचना राजा भोगीलाल के लिये सम्वत् १७८३ में की थी। इसमें अष्टांगवती नायिकाओ का वर्णन है।

"शब्द रसायन या काव्य रसायन"

यह ग्रन्थ देव की आचार्यता का परिचायक है। इसमें पदार्थ निर्णय और रसो तथा अलङ्कारो पर बहुत अच्छी तरह से विचार किया गया है और छन्दो पर भी प्रकाश डाला गया है।

"सुखसागर तरंग"

यह देव का सब से बड़ा ग्रन्थ है और यह पिहानी निवासी अकबर अली खाँ के लिये बनाया गया था। इसमें विभिन्न विषयों

पर सब मिलकर ८५० छन्द हैं ।

"देव माया प्रपञ्च नाटक"

यह 'प्रबन्ध चन्द्रोदय' नाटक के समान एक अर्ध विकसित नाटक है । यह नाटक की किसीं कसौटी पर नहीं कसा जा सक्ता इसलिये इसे नाटक कहना भूल है ।

"वृक्ष विलास और पावस विलास"

ये छोटी छोटी सी पुस्तकायें हैं और इनमें क्रमशः वृक्षो और पावसों का वर्णन है।

"देव शतक"

यह जयपुर से निकला है और इसकी रचना साधारण है ।

अन्त में सब मिलाकर देव की रचनाओ के सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि इनमें अधिकांश उत्कृष्ट हैं । देव की भाषा विशुद्ध व्रज-भाषा है । काव्य के सारे गुण इनकी रचनाओं में उपलब्ध है । कल्पनायें बड़ी हो उच्च कोटि की है । उपमाओ मे मौलिकता है । इनके सभी ग्रन्थो मे समान छन्द पाये जाते हैं । क्योकि वे काव्य के भिन्न भिन्न अंगो के उदाहरण में उपस्थित किये गये हैं । अन्य कवियों के भावो का भी देव ने हृदय से स्वागत किया है ।

देव-रत्नावली

(१)

जादव बृद्ध जो लेन पठाए,
ते तौ धनु गोधनु लै सबु जैये।
या लरिकाहि कहा करिहै नृप,
गोप-समूह सबै सँग ह्वै ॥
तौ ही लौं जीवनु मो ब्रज जौ लगि,
खेलतु साथ लिए बल भैयै।
सर्बसु कंसु हरौ न अभै किन,
आँखिनु ओट करौ न कन्हैयै ॥

(२)

जाके न काम, न क्रोध, विरोध न,
लोभ छुवै नहिं छोभ को छाहौं।
मोह न जाहि रहै जग-बाहिर,
मोल जवाहिर तौ अति चाहौं ॥
बानी पुनीत ज्यों 'देव' धुनी रस,
आरद सारद के गुन गाहौं।
सील-ससी, सविता-छबिता,
कविताहि रचै, कवि ताहि सराहौं।

धनु—द्रव्य। गोधनु- गायें। अभै—बेखटके। जग-बाहिर-
ो कोत्तर। पुनीत—पवित्र। धुनी—गंगा।

(३)

आवत आयु को द्यौस अथौत,
गए रवि यों अँधियारिए ऐहै।
दाम खरे दै खरीदु खरो गुरु,
मोह की गोनी न फेरि बिकैहै॥
'देव' जितीस की छाप विना,
जमराज जगाती महादुख देहै।
जात उठी पुर देह की पैंठ,
अरे बनियै बनियै नहिं रैहै।

(४)

कालिय काल महा विष व्याल,
जहाँ जल ज्वाल जरै रजनी दिनु।
ऊरध के अधके उबरै नहिं,
जाकी बयारि बरै तरु ज्योतिनु॥
ता फन की फन-फसिन्ड पै फाँद,
जाइ फँसे उकसे न कहूँ बिनु।
हा ब्रजनाथ! सनाथ करौ,
हम होतीं हैं नाथ अनाथ तुमैं बिनु॥

अथौत—अस्त होते हुए। गोनी—लदान। जगाती—समूह। पैंठ—बजार। ऊरध—ऊपर। फन फसिन्ड—फड़ों का समूह। उकसे—उभरा हुआ।

(५)

कान मुराई पै कान न आनति,
आनन आन कथा न कढ़ी है।
एकहिं रंग रँगी नख दै सिख,
एकहिं संग बिबेक बढ़ी है ॥
देखिए 'देव' जबै, तब ज्यों ही त्यों,
दूसरी पद्धतियै य पढ़ी है।
को बिरचै कुल-कानि अचै,
मन के निहचै हिय चैन चढ़ी है।

(६)

केते करे सुकपोत कपोतक,
पिंजर-पिंजर बीच बिबादनि।
को गनै चातक चक्र चकोर,
कला पिक मोर मराल प्रबादनि ॥
बीन ज्यों बोलति बाल प्रबीन,
नवीन सुधा-रस-स्वाद सवादनि।
वारौं सुकंठी के कंठ खुले,
कलकंठन के कलकंठ निनादनि ॥

आन—दूसरी। पद्धतियै—परिपाटी। कुल-कानि अचै—वंश मर्यादा को तिलांजलि दे कर। मराल—हंस। वारौं—निछावर करौ। कलकंठन—मयूर। निनादनि—बोली।

(७)

गूजरी ऊबरे जोबन को कछु,
मोल कहौ दधि को सब देहौं।
'देव' इतो इतराहु नहीं,
इनहीं मृदु बोल न मोल बिकैहौं॥
मोल कहा, अनमोल बिकाहुगी,
ऐंचि अबै अधरा-रसु लैहौं।
कैसी कही फिरि तौ कहौ कान्ह,
अबै कछु हौंहू कका की सौं कैहौं॥

(८)

आजु अबै सुधरी उधरी भ्रम,
काज-निमित्त सुचित्त चलाकिन।
चाहत नाह चलो परदेस कौं,
नाहक नाह कहो अबला किन॥
'देव'सरोग उठी सगुनै कहि,
कामिनि दामिनि सोन-सलाकिन।
झूमि रही बनमालिनि भूमि पै,
घूमि रही घन-पाल बलाकिन॥

अनमोल—बिन दामों की। नाह-पति। अबला—स्त्री।
सोन सलाकिन—सोने की सलाई। बलाकिन—बगुलों की पंक्तियाँ।

(९)

फूले अनारन पांडुर डारन,
देखत 'देव' महाडरु मांचै।
माधुरी झौंरन अंब के बौरन,
भौंरन के गन मंत्र से बांचैं॥
लागि उड़ै बिरहागिन की,
कचनारन बीच अचानक आचै।
सांचे हुंकारि पुकारि पिकी कहैं,
नाच बनैंगी बसन्त की पांचैं॥

(१०)

कछु और उपाय करै जनि री,
इतने दुख क्यों सुख सों भरिबी।
फिरि अंतर सों बिन कंत बसंत के,
आवत जीवित ही जरिबी॥
बन बौरत बौरी ह्वै जाउगी 'देव,
सुने धुनि कोकिल की डरिबी।
जब डोलिहैं और अबीर भरी,
सुहहा कहि बीर कहा करिबी॥

पांडुर—पीला।—झौंरन—समूह।—असक—रोब दाब।
कंत—पति। बीर—सखी।

(११)

राधिका-सी सुर-सिद्ध-सुता,
नर-नाग-सुता 'कविदेव' न भू पर।
चन्द करौं मुख देखि निछावरि,
केहरि कोटि लटो कटि हू पर॥
काम-कमान हू को भृकुटीन पै,
मीन मृगीन हू को दृग दू पर।
वारौंरी कंचन-कंज-कली,
पिकवैनी के ओछे उरोजन ऊपर॥

(१२)

कोयन जोति चहूँ चपला,
सुर-चाप सुभ्रू रुचि कज्जल कादौ।
बूँद बड़े बरसैं अँसुवा,
हिरदै न बसै निरदै पति जादौ॥
'देव' समीर नहीं दुनिए,
धुनिए सुनिए कलकंठ निनादौ।
तारे खुले न घिरी बसनी,
घन नैन भए दोउ सावन-भादौ॥

काम-कमान—मनोज-चाप। दृग—दोनो नेत्र। ओछे-छोटे। चपला—बिजली। कादौ—कीचड़। पतिजादौ—श्रीकृष्ण। समीर—हवा।

(१३)

अंत रुकै नहिं अंतरु कै,
मिलि अंतरु कै सुनिरंतरु धारै।
ऊपर वाहि न ऊपर वाहित,
ऊपर बाहिर की गति चारै॥
बातन हारति बात न हारति,
हारति जीभ न बातन हारै।
'देव' रँगी सुरत्यौ सुरत्यौ मनु,
देवर की सुरत्यौ न बिसारै॥

(१४)

पूरन प्रेम सुधा बसुधाऊ,
सुधारमई बसुधार सु रेखी।
जीवन या ब्रज जीवन की,
ब्रज जीवन जीवनमूरि बिसेखी॥
तू परमावधि रूप रमा,
परमानद को परमानँद पेखी।
नेह भरी नख ते सिख 'देव',
सुदेह धरे ससि मूरति देखी॥

अंत रुकै नहिं,--और कहीं नहीं ठहरती। रंगी--प्रीति। सुरत्यौ--सुरत। बसुधारमई--ज्योतिपूर्ण। ब्रज जीवन--भगवान कृष्ण। परमावधि--चरम सीमा। पेखो--देखकर।

(१५)

ईंगुर-सो रँग एड़िन बीच,
भरी अँगुरी अति कोमलतायनि।
चन्दन-बिन्दु मनौ दमकै नख,
'देव' चुनी चमकै ज्यों सुभायनि॥
बन्दत नन्दकुमार तिहारेई
राधे बधू ब्रज की ठकुरायनि।
नूपुर संजुत मंजु मनोहर,
जावक-रंजित कंज से पायनि॥

(१६)

आपुस मैं रस मैं रहसैं,
बहसैं बनि राधिका कुञ्जबिहारी।
स्यामा सराहति स्यामकी पागहि,
स्याम सराहत स्यामा की सारी॥
एकहि आरसी देखि कहै तिय,
नी लगौ पिय प्यौ कहै प्यारी।
'देवजू' बालम बाल को बाद,
बिलोकि भाई बलि हौं बलिहारी॥

जावक रंजित—महाउर लगा हुआ। आरसी—दर्पण।
प्यौ—पति। बालम बाल—दम्पति।

(१७)

पीछे तिरीछे कटाछन सौं,
इत वै चितवैं री लला ललचौंहैं।
चौगुनो चाव चवायनि के चित,
चाह चढ़े हैं चबाउ मचौ हैं॥
जोबन आयो न पाप लग्यो,
'कवि देव' रहैं गुरु लोग रिसौंहैं।
जी मैं लजैए जुजैए कहूं,
तित पैयै कलंक चितैए जु सौंहैं॥

(१८)

साँकरी खोरि बखोरि हमैं,
किन खोरि लगाय खिसैबो करौ कोइ।
हारेहु हाय नहीं करिहैं हिय,
घायन लोन घिसैबो करौ कोइ॥
'देवजू' धीर धरो सुधरो किन,
ओठनि दंत पिसैबो करो कोइ।
रूप हमैं दरसैबो करौ,
अरसैबो करौ कि रिसैबो करौ कोइ॥

चबाउ—अपवाद। रिसौहैं—क्रोधित। चितैए जु सौहैं—यदि सामने देखैं। साकरी खोरि—तङ्ग रास्ता। बखोरि—खोचकर खोरि—अपराध। घायन लोन घिसैबो—घाव में निमक डालना।

(१९)

पहिले सतराय रिसाय सखी,
जदुराय पै पाय गहाइए तौ।
फिरि भेंटि भटू भरि अंक निसंक,
बड़े खिन लौं उर लाइए तौ॥
अपनो दुख औरन को उपहास,
सबै 'कबि देव' बताइए तौ।
घनस्यामहिं नेकहुँ एक घरी को,
इहाँ लगि जो करि पाइए तौ।

(२०)

जागत हू सपने न तजौं,
अपनेई अयानपने कौ अँध्यारो।
क्यौं हू छिपात छिनौं न दिनौ,
निसि देह दियै दुति 'देव' उज्यारो॥
नैनन ते निचुरयो परै नेह,
रुखाई के बैनन को न पत्यारो।
दूरि रह्यो कित जीवन-मूरि,
जु पूरि रह्यो प्रतिबिम्ब ज्यों प्यारो॥

भटू—सखी। निसंक—बेखटके। बड़े खिन लौं—बहुत देर तक। अयानपनै—सीधापन, मूर्खता। निचुरयो परै नेह—प्रेम टपक रहा है। पत्यारो—विश्वास किया। प्रतिबिम्ब—परछाईं।

(२१)

मैं समुझायो नहीं समुझै,
मन को अपनो अपमान न सूझै।
मोहन मान करै तो गरे परि,
'देव' मनैबे को जाइ अरूझै॥
काको भयो सब सों बिगरो यह
जाको मरै सु तौ बात न बूझै।
सौति हमारी सो प्यारे की प्यारी,
ता प्यारे के प्यार परोसि सौं जूझै॥

(२२*)

घोर लगै घर बाहिरहू डर,
नूतन भूत दवागि जरे-से।
रंगित भीतिन भीत लगै,
लखि रंगमही रनरंग डरे-से॥
धूम घटागर धूपन की,
निकसे नवजालन व्याल भरे-से
जो गिरि-कंदर-से मन-मन्दिर
आज़ अहो उजरे उजरे-से॥

गरेपरि--परवश। अरूझै--उलझना। जूझै--लड़ै। दवागि--वनाग्नि। रङ्गमही--रङ्गभूमि। गिरि-कन्दर--पर्वत कन्दरा। मनि मन्दिर--मणि जड़ित सौध। उजरे--श्वेत। उजरे--उजड़े हुये।

(२३)

खोरि लौं खेलन आवतीयै न,
तौ आलिन के मत मैं परती क्यों।
'देव' गुपालहि देखतीयै न,
तौ या बिरहानल मैं बरती क्यों॥
माधुरी मंजुल अम्ब की बालि
सुभालि-सी ह्वै उरमैं अरती क्यौं।
कोमल कूकि कै कोकिल कूर,
करेजनि की किरचैं करती क्यौं॥

(२४)

पूतना को पय पान करो,
मनु पूत-नाते बिसवास बगाहत।
'देव' कहा कहौं मातु-पिता-हित,
बंधुन सौं हित नीके निबाहत॥
कारे हौ कान्ह किनारे हौ कीलि,
रहे गुन लील पै औगुन थाहत।
पन्नग की मनि कीन्हें तुम्हैं,
तुम पन्नग की किचुली कियो चाहत॥

अम्ब की बालि—रसाल मजरी। सुभालि—कुन्त के समान। अरती—चुभती। पूत-नाते—पुत्र का नाते। बगाहत—निबाह किया करते। पन्नग—सर्प।

(२५)

राधे कही है कि ते छमियो
ब्रजनाथ जिते अपराध किए मैं।
कानन तान न भूलत ना खिन,
आँखिन रूप अनूप पिए मैं॥
ओछे हिये अपने दिन-राति,
दयानिधि 'देव' बसाय लिये मैं।
हौंहूं असाधु बसी न कहूं पल,
आधु अगाधु तिहारे हिए मैं॥

(२६)

केती न नागरि नौल-बधू,
तुम ही गुन-आगरि आई न गौने।
'देव' सकोचति सोचति क्यों,
मृग-लोचनि लोचनि ह्वै ललचौने॥
पी को पियूष सखी सुर-रूख -ते,
सूखत सूखत या मुख मौने।
मान के मन्दर रूप-समुन्दर,
इन्दु से सुन्दर सील सलौने॥

नाखिन—क्षणमात्र भी नहीं भूलती। आधु—थोड़ी देर के लिये भी। अगाधु—गम्भीर। नौल बधू—नई बहू। इन्दु—चन्द्रमा।

(२७)

चोरी लगै चहूं ओर चितौतु,
कलङ्क लगै मग मैं पगु दै री।
दंतनि दाबि रहौ अँगुरी,
अँगुरी कहुँ नेकु जु पै! उघरै री॥
'देव' दुरे रहिए हँसिए नहिं,
बैरिन बैस किए जग बैरी।
जौन घिरे रहिए घर मैं तो,
घने घिरि आवत हैं घर घैरी॥

(२८)

प्रान-से प्रानपती निरन्तर,
अन्तर अन्तर पारत है री॥
'देव' कहा कहौं बाहे रहूं घर
बाहर हूं रहै भौंह तरेरी॥
लाज न लागति लाज अहे तोहि,
जानी मैं आज अकाजिनि एरी।
देखन दै हरि कों भरि नैन,
घरी छिन एक सरीकिनि. मेरी॥

अँगुरी—अँगुली। अगुरी—अङ्ग। नेकु—थोड़ी भी। घिरे रहिए—बैठे रहना। घर घैरी—चवाव करने वाले। अन्तर पारत—फर्क डालती है। रहे भौंह तरेरी—आँख चढ़ाये रहे। अकाजिनि—हठ करने वाली। सरीकिनि—साथ देने वाली।

(२९)

तीनहू लोक नचावति ऊक मैं,
मंत्र के सूत अभूत गती है।
आपु महा गुनअन्त गुसाइनि,
पायनि पूजत प्रानपती है॥
पैनी चितौनि चलावति चेटक,
को न कियो बस योगि-जती है।
कामरू-कामिनि काम-कला,
जग-मोहनि भामिनि भानमती है॥

(३०)

एड़िन ऊपर घूमत घाँघरो,
तैसिए सोहति सालू की सारी।
हाथ हरी-हरी छाजै छरी,
अरु जूती चढ़ी पग फूँद-फुँदारी॥
ऊँचे उरोज हरा घुंघुचीन के,
हाँ कहि हाँकति पैल निहारी।
गात नहीं दिखराय बटोहिन,
बातन हीं बनिजै बनिजारी॥

ऊकमैं--जादू, उलका। कामरू-कामिन--कामरूप देश की स्त्री। भानमती--जादूगरनी। बटोहिन--राहगीरों को। बनिजै--व्यापार करती है। बनिजारी--बनजारे की स्त्री।

(३१)

तीर परचो जु गहीर गुहा,
गिरि धीर धरचो सु अधीर महा हैं।
पूँछती पीर भरें दृग नीर,
त्यों एकै समीर करैं औ सराहैं।
छोर भिजै एक पौंछती चीर लै,
राधे रहैं तिरछी करि छाहैं।
मैंड़ती भीर अहीरन की,
वर बीरज की बलबीर की बाँहैं॥

(३२)

को तप कै सुरराज भयो,
जमराज को बन्धनु कौने खोलायो।
मेरु मही मैं सही कटि कै,
गथ ढेरु कुबेरु को कौने तुलायो॥
पाप न पुन्य न नर्क न सर्ग,
मरो सुमिरो फिरि कौने बुलायो।
मूढ़ ही वेद पुराननि बाँचि,
लबारनि लोग भले भुरकायो॥

गहीर—गहरी। बाँच—पढ़कर। लबारनि—झूठों ने।
भुरकायो—धोखा दिया।

(३३)

बाग्यो बन्यो जरतार कौ तामहिं,
ओस कौ हार तन्यो मकरी ने।
पानी मैं पाहन-पोत चल्यौ चढ़ि,
कागद की छतुरी सिर दीने॥
काँख मैं बाँधि कै पाँख पतंग के,
'देव' सुसंग पतंग कौ लीने।
मौम के मन्दिर माखन कौ मुनि,
बैठ्यौ हुतासन आसन कीने॥

(३४)

गंग तरंगिनि बीच बरंगिनि,
ठाढ़ी करैं जपु रूप उदोती।
'देव' दिवाकर की किरनैं,
निकसैं बिकसै मुख-पंकज जोती॥
नीर भरी निचुरैं अलकैं,
छुटि कै छलकै मनो माँग ते मोती।
बिज्जुलि-से झलकैं लपटे कान,
कज्जल-से अङ्ग उज्जल धोती।

बरङ्गनि—अच्छे गात्रों वाली। रूप उदोती—जिसका रूप चमक रहा है। दिवाकर—सूर्य्य।

(३५)

सारस न भूख न भूखन की सुधि,
भाग्य सु भूखन सों उपजावै ।
'देव' इकंतहि कंतित के गुन,
गावति नाचति नेह सजावै ॥
प्रेम-भरी पुलकै मुलकै उर,
व्याकुल के कुल-लोक लजावै ।
लै परबी परबी न गनै,
कर बीन लिए परबीन बजावै ॥

(३६)

ग्रीष्म द्वै पहरी मिस जोन्ह,
महाविष ज्वालन सों परिवेठी ।
देखत दूब पिये हू पियूष,
अछूव महूव मिली महुरेठी ।
'देव' दुराएहु जोति सी होति,
अंगेठी से अंगनि आगि अंगेठी ॥
कातिक-राति जगी जम जोय,
जुठैल जुठेरी सुजेठ की जेठी ॥

परिवेठी—घिरी हुई । अछूव—ध्व ने विशेष । महूव—भारद्वाज पक्षी विशेष । महुरेठी-विपर्य । जेठी—अधिक ।

(३७)

कातिक पूनौ की राति ससी,
दिसि पूरब अंबर मैं जिय जान्यौ ।
चित्त भ्रम्यौ पुमनिन्दु मनिन्दु,
फनिन्दु उठ्यौ भ्रम ही सौं भुलान्यौ ॥
'देव' कछू बिसवास नहीं,
सोइ पुञ्ज प्रकाश अकास मैं तान्यो ।
रुप-सुधा अँखियान अँचै,
निहिचै मुख राधिका को पहिचान्यो ॥

(३८)

नाचत मोर नचावत चातिक,
गावत दादुर आरभटी मैं ।
कोकिल की किलकार सुने,
बिरही बपुरे बिष घूँटे घटी मैं ॥
अंबर नील घनी घनमाल सु,
भूमि बनी बनमाल तटी मैं ।
सांवर पीत मिले झलकैं
घन दामिनि से घन स्याम पटी मैं ॥

फनिन्दु—सर्प । पुञ्ज प्रकास—उजाली का समूह । आरभटी—वृत्ति विशेष । बिहारी बपुरे बिष घूँटे घटी मैं—बिरही को असह्य वेदना होती है । अंबर—आकाश ।

(३९)

आई बसंत लग्यो बरसावन,
नैनन से सरिता उमहै री।
कौ लगि जीव छपावै छपा मैं,
छपाकर की छवि छाई रहै री॥
सीतल मंद सुबोध, समीर,
बहै, दिन दूगुनी देह दहै री॥

(४०)

आँगी कसैं, उकसैं कुच ऊँचे,
हँसै हुलसै फुंफुदीन की फूँदैं।
चन्दन ओट करै पिय ओट,
पै अंचल ओट दृगंचल मूँदै॥
'देव जू' कुंकुम केसरि की,
मुख-वारिज बीच विराजती बूँदैं।
बाढ़्यो विनोद गुलाल लै गोदनि,
मोद-भरी चहुँ कोदनि कूँदैं॥

उमहै--उमड़ैं। छपाकर--चन्द्रमा। फुंफुदीन की फूँदैं--नारे की गाठ। दृगन्चल--आंखों का पपोटा। मुखवारिज--मुख कमल। चहुँ कोदनि-- चारों ओर फांदती हैं।

(४१)

परिहास कियो हरि 'देव' सुभान को,
वा मुख वेन नच्यो नट ज्यों।
करि तीछी कटाच्छ कृपान भयो,
मन पूरन रोष भरयो भट ज्यों॥
लपिटाय गही खट-पाटी करौंट लै,
मान-महोदधि को तट ज्यों॥
कटु बोल सुने पटुता मुख को,
पट लै पलटी उलटयौ पट ज्यों॥

(४२)

खंजन मीन मृगीन की छीनी,
दृगंचल चंचलता निमिखा की।
'देव' मयंक के अंक को पंक,
निसंक लै कज्जल-लीक लिखा की॥
कान्ह बसी अँखियान बिषे,
बिसफूरति बीस बिसे बिसिखा की।
दीपति मैन-महीन लिखाई,
समीप सिखा गहि दीप-सिखा की॥

खटपाटी—खाट की पाटी। मान-महोदधि—मान रूपी समुद्र। निमिखा की—थोड़ी देर के लिए। मयक—चन्द्रमा। बिसिखा की—बाँह। मैन-महीप—काम नरेश। दीप सिखा—दीपक की जोति।

(४३)

कानिनि कोननि कूदि फिरैं,
करि सौतिन के उर खेत की खूँदनि।
'देव जू' दौरि मिले ढिग ज्यौं मृग,
जे न फँदे फँदवार के फूँदनि॥
घूंघट के घटकी नटिकी,
सुछुटी लटकी लटकी गुनगूँदनि।
केहू कछू न छुरै बिछुरै,
बिचरै न चुरै निचुरै जल बूँदनि॥

(४४)

माथे मनोहर मौर लसै;
पहिरे हिय मैं गहिरे गुँजहारनि।
कुंडल मंडित गोल कपोल,
सुधा-सम बोल बिलोल निहारनि॥
सोहति त्यौं कटि पीत पटी,
मन मोहति मंद महा पग धारनि।
सुन्दर नन्द कुमार के ऊपर,
वारिए कोटिक मार कुमारनि॥

खूँदनि—रौंदना। गहिरे—घने। कुँडल मंडित—कर्ण भूषणों से शोभित। बिलोलि निहारनि—चंचल दृष्टि मार कुमारनि—कामदेव के पुत्र।

(४५)

ओंड़ चितौनि कहूँ उड़ि लागती,
बंदन आड़ जो आड़े न होती।
डारतो गूँदि गुमान गयंदु जो,
गोल कपोलनि गाड़ न होती॥
लूटती लोकुलटैं सफुलेल,
हमेल हिये भुज हाड़ न होती।
चंदु अचानक च्वै परतो,
मुख-चंदु पैं जो चित चाड़ न होती॥

(४६)

सारसो सारस हंसिनी हंस,
चकोरी चकोर मिले सुख लूटैं।
'देव' चितै चकई चकवा,
बिछुरे निसि के बिस-घूँट-से घूटैं॥
केते कपोत मृगी मृग री,
युग जीवैं न जो युग योग तें फूटैं॥
फूली लता रस के वस दौरत,
भौंर के भारन डार न टूटैं॥

चितौनि--दृष्टि। बंदन आड़े--बंदन की रेखा। आड़े न सामने न होती। गयंद--हाथी। सफुलेल--तेल लगी हुई। चाड़--गहरी चाह। बिस-घूट-से घूटैं--दारुण यातना पायें।

(४७)

जेठी बड़ी ते अमेठिसि भौंहनि,
रुच्छ महा मन सूछम सींछैं।
'देव जू' बातनि हीं सो हितौति सी,
सौति सगी सु चितौति तिरीछैं॥
लाज की आँचनि या चित राच,
न नाच नचाइहौं नेह न छीछैं॥
चाह भरी फिरौं या चित मेरे,
कि छाँह भई फिरौं नाह के पीछैं॥

(४८)

काहू की कोई कहावति हौं,
नहि जाति न पाँति न जाते खसौंगी।
मेरियै हास करौ किन लोग हौ,
को 'कव देवि जू' काहि हसौंगी॥
गोकुलचन्द की चेरी चकोरी ह्वै,
मंद हँसी मृदु फँद फँसौगी।
मेरी न बात बकौ बलि कोई हौ,
बावरी ह्वै ब्रज-बीच बसौंगी॥

अमेठिसि भौंहनि—तनी हुई भौंहें। चितौति—देखते हुए। नाह—पति। खसौंगी। गिरोंगी गोकुलचन्द की चेरी—भगवान कृष्ण की दासी। बावरी—पगली।

(४९)

जागत जागत खीन भई,
अब लागत संग सखीन को भारौ।
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा,
सुख सौं यसिबो बिसे बीस बिसारौ॥
तो सुधि दौस गवावति 'देव जू'
जामिनि जाम मनों जुग चारौ।
नीरज-नैन निहारिए नैनन,
धीरज राखत ध्यान तिहारौ॥

(५०)

उठी अकुलाय सुनी जब नेक,
कला परबीन लला ब्रजराज।
बिसारि दई 'कवि देव' तुम्हैं,
अवलोकत ही अब लोक की लाज॥
इते पर और चवाव चल्यौ,
बरजै घर जे गुरु लोग समाज।
कहाँ लगि लाल कछू कहिए,
इतनी सहिए सब रावरे काज॥

खीन—दुबली। बिसे बीस बिसारौ—हर तरह से छोड़ दिया। दौस गवावति—दिन बिताती है। जामिनि जाम—रात की घड़ियाँ। नेक—थोड़ा सा। अवलोकत—देखते ही। लोक की लाज—कुल की मर्य्यादा। बरजै—मना करे।

(५१)

आँखि मिहीचनि खेलत मोहि
इह विधि सोध कहूँ नटि जाइ न ।
चोर ह्वै सोर कै नंदकिसोर री,
जाइ छिपै पै कहूं सटि जाइ न ।
नैन-मिहीचौं जुपै उनके,
तजि लाज सनेह कहूँ परि जाइ न ।
नाथ हा ! हाथ सरोज से मेरे,
करेरे कटाच्छ कहूँ कटि जाइ न ॥

(५२)

आई नहीं तन में तरुनाई,
भई नहिं स्याम के संग सँयोगिनि ।
कौने सिखाई धौं सीख कहा,
सुमिरै धरि ध्यान मनो जुग जोगिनि ।
भोजन बास न हास बिलास,
उसास भरे मनौं दीरघ रोगिनि ।
आँखिन ते अँसुआ नहि सूखत,
एकहि बार ह्वै बैठी बियोगिनि ॥

सटि जाइ—दुबक जाना । मिहीचौं—बंद करैं । तरुनाई—जवानी । सीख—शिक्षा । सुमिरै—याद करे । जुग जोगिनि—वृद्धा योगिनी ।

(५३)

वे बतियाँ छतियाँ लहकैं,
दहकैं बिरहागिनि की उर आँचैं।
वा बँसुरी को परयो रसु री,
इन कानन मोहन मंत्र-से माचैं॥
कौ लगि ध्यान धरे मुनि लौं,
रहिए कहिए गुन बेद से बाचैं,
सूझत ना सखि आन कछू,
निसी-दौस वई अँखियान मैं नाचैं॥

(५४)

मंजुल मंजरी पंजरी सी ह्वै,
मनोज के ओज सम्हारति चीर न।
भूख न प्यास न नींद परै,
परी प्रेम अजीरन के जुर जीरन॥
'देव' घरी-पल जात घुरीं;
अँसुवान के नीर उसास समीरन।
आहन जाति अहीर अहे;
तुम्हैं कान्ह कहा कहौं काहु को पीर न॥

दहकै—प्रज्वलित। मनोज के ओज—काम का वेग। प्रेम अजीरन—प्रेमाधिक्य। आहन—कठोर।

(५५)

कालिह ही साँझ उड्यो कर साझ,
ते 'देव' खरो तब ते उरसाल्यो।
एक भली भई बाग तिहारे ही;
श्रीफल औ कदली चढ़ि हाल्यो॥
वंचक बिंबनि चंचु चुभायत,
कुञ्ज के पिंजर मैं गहि घाल्यो।
हौ सुकहूँ नहि राखि सकी;
सुकहूं सुन्यो तैंही परोसिनि पाल्यो॥

(५६)

इन्द्र ज्यों राज कुबेर ज्यों संपति,
त्यों दृग दीपति लाज धरे री।
बालक ज्ञान दै बीरध पान दै;
अंजन सान दै क्यौं निदरे री॥
गोकुल मैं कुल तो कुल पै;
कँह उज्जल तो-से सुभाय भरे री।
इंदु मैं आगि पियूष मैं ज्यों विष,
'देव' त्यों तो मुख बात करेरी॥

वंचक बिंबनि—धोखा देनेवाला। घाल्यो—डालता है। सुकहुँ—तोता नायक। बीरध—वृद्ध को। कुल—समूह। इंदु—चन्द्रमा। पियूष-अमृत। बात करेरी—कटु बचन।

(५७)

बारियै बैस बड़ी चतुरे हौ,
बड़े गुन 'देव' बड़ोऐ बनाई ।
सुन्दरै हौ सुघरै हौ सलोनी हौ,
सील भरी रस रूप सनाई ॥
राजबहू बलि राजकुमारि,
अहो सुकुमारि न मानौ मनाई ।
नैसुक नाह के नेह बिना,
चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई ॥

(५८)

प्रानपती के प्रभात पयान,
प्रभाकर कोटि हुतो प्रतिकूल-सों ।
रैहैं क्यों प्रान प्रलै पहिले दिन,
दूसरौ दौस दसा दुख-मूल सों ॥
नेह रच्यो बिरहागि तच्यो,
प्रिय-प्रेम पच्यौ पजरै तन तूल-सौं ।
सासनि सूखि उसासनि रूखि,
गयो मुख सूखि गुलाब के फूल सौं ॥

नैसुक—थोड़ा सा भी। पयान—यात्रा तूल-सो—किनारे से।

(५६)

आजु गई हुती कुंजन लौं,
बरसै उत बुंद घने घन घोरत।
'देव' कहै हरि भींजत देखि,
अचानक आई गए चित चोरत॥
पोटि भटू तट ओट बटी के,
लपेटि पटी सों कटी पटु छोरत।
चौगुनी रंग चढ़ी चित मैं,
चुनरी के चुचात लला के निचोरत॥

(६०)

'देव' दिखावति कंचन-सौ तन
औरन कौ मन तावै अगौनी।
सुन्दरि सांचे मैं दै भरि काढ़ी-सि,
आपने हाथ गढ़ी बिधि सौनी॥
सोहति चूनरि स्याम किसोरी कि,
गोरी गुमान भरी गज-गौनी।
कुन्दन लीक कसौटी मैं लेखी सि,
देखी सु नारि सुनानि सलौनी॥

पोटि—पुचकार कर। भटू—सखी। कटी पटु छोरत—धोती खोलते। तावै—तपाती है। अगोनी-जो गौने नहीं गई। आपने हाथ गढ़ी विधि सोनी—स्वर्णकार पिता। अज-गोनी—हाथी के समान मस्त चलने वाली।

(६१)

बटु ह्वै नटु ह्वै कै रिझावै जिन्हैं,
हरि, 'देव' कहैं बतियाँ तुतरी।
बिधि ईस के सीस बसी बहु बारन,
कोटि कला रज-सिंधु तरी॥
जगमोहनि राधे तू पाँइ परों,
वृषभान के भौंन अभै उतरी।
गुन बाँधे नचावति तीनहुँ लोक,
लिए कर ज्यों कर की पुतरी॥

(६२)

मूढ़ि कहैं मरि कै फिरि पाइए,
ह्याँ जु लुटाइए भौन भरे को।
ते खल खोइ खिस्यात खरे,
अवतार सुन्यो कहूँ छार परे को॥
जीवत तौ ब्रत भूख सुखौत,
सरीर महा सुर रूख हरे को।
ऐसी असाधु असाधुन की बुद्धि,
साधना देत सराध मरे को॥

बटु—ब्रह्मचारी, बावन। नटु—नटवर कृष्ण। जिन्हैं—राधिका को। बिधि—ब्रह्मा। ईस के सीस—महादेव के मस्तक पर। रजसिन्धु-धूल का समुद्र।

(६३)

है अभिमान तजे सनमान,
वृथा अभिमान को मान बहैए।
'देव' दया करै सेवक जानि,
सुसील सुभाय सलोनी लहैए॥
को सुनि कै बिन मोल बिकाय न,
बोलन कोई को मोल नहैए।
पैए असीस लचैये जो सीस,
लची रहिए तब ऊँची कहैए॥

(६४)

निसि बासर सात रसातल लौं,
सरसात घने घन बंधन नाख्यौ।
ब्रज गोकुल ऊ ब्रज गोकुल ऊपर,
ज्यौं परज्यो परलौ मुख भाख्यौ॥
करुना कर त्यों बर सैल लियो,
करुना करि कै बरसै अभिलाख्यौ।
मुरको न कहूं सुर को रिपु री,
अँगुरी न मुरयौ अँगुरी पर राख्यौ॥

सलोना—सुन्दर। नाख्यौ—उल्लघन लिया। ब्रज गोकुल—ब्रज में रहनेवाली गाये। ब्रज गोकुल—ब्रज मडल और गोकुल ग्राम। बर सैल लियो—गोवर्धन उठाया। मुरको—हटा। सुरको रिपु री—भगवान कृष्ण। अगुरी न मुरयो—देह भी नहीं हटाया।

(६५)

पीर पराई सों पीरो भयो मुख,
दीननि के दुख देखे बिलाती।
भीजि रही करुना करुनारस,
काल की केलिनु सों कुम्हिलाती॥
लै लै उसासन आँसुन सों,
उमगै सरिता भरि कै ढरि जाती।
नाव लौं नैन भरै उछरैं,
जल ऊपर ही पुतरी उतराती॥

(६६)

सीय के भाग के अच्छत अंकुर,
पुन्यनि के फल-फूल कढ़ाए।
भूषन की मुख भोप मृगम्मद,
चंदन मंद हंसीन बढ़ाए॥
'देव' बिधीस के जान के ईस,
मुनीसन भाससि-मन्त्र पढ़ाए॥
श्रीरघुनाथ के हाथन पै,
मृगनैननि नैन-सरोज चढ़ाए॥

बिलाती—दबी जाती, गली जाती। करुना-दया करना। अच्छत—अविनाशी। मृगम्मद—कस्तूरी। बिधीस—ब्रह्मा और शङ्कर। ईस—रामचन्द्र।

(६७)

सजोगिन की तू हरै उर-पीर,
  वियोगिन के सचरै उर-पीर।
कली न खिलाइ करै मधु-पान,
  गलीन भरै मधुपान की भीर॥
नचै मिलि बेलि वधूनि अचै,
  सुर 'देव' नचावति आधि अधीर।
तिहू गुन देखिए दोप-भरो,
  अरे सीतल, मंद, सुगंध समीर॥

(६८)

सुनि कै धुनि चातक मोरनि की,
  चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागनि मैं,
  सखि रागत राग अचूकनि सों॥
'कवि देव' घटा उनई जु नई,
  बन भूमि गई दल दूकनि सों।
रँगराती हरी हहराती लता,
  झुकि जाती समीर के झूकनि सों॥

सचरै-जगावै। मधुपान की भीर—भ्रमरों का समूह। उनई—झुक आई। दूकनि—दो एक।

(६९)

झूलनिहारी अनोखी नई,
उनई रहती इत ही रँगराती।
मेह मैं ल्यावै सु तैसियै संग की,
रंग-भरी चुनरी चुचवाती॥
झूला चढ़े हरि साथ हहाकारि,
'देव' झुलावति ही ते डराती।
भोर हिंडोरे की डारिन छाँड़ि,
खरे ससवाइ गरे लपटाती॥

(७०)

लोग लुगाइन होरी लगाइ;
मिलामिली चारु न मेटत ही बन्यौ।
'देव' जू' चंदन-चूर कपूर,
लिलारन लै लै लपेटत ही बन्यौ॥
ये इहि औसर आए इहाँ,
समुहाइ हियो न समेटत ही बन्यौ।
कीनी अनाकनि औ मुख मोरि;
पै जोरिभुना भटू भेंटत ही बन्यौ॥

अनोखी—निराली। उनई—उमड़ी हुई। ससवाइ—सीत्कार करके। चारु—सुन्दर। लिलारन—मस्तक। लपेटत—लगाना। ये—पति। समुहाइ—आगे होकर। अनाकनि—निषेध।

(७१)

पीक-भरी पलकैं झलकैं,
अलकैं जु गड़ी सुलसैं भुज खोज की।
छाय रही छबि छैल की छाती मैं,
छाप बनी कहुँ ओछे उरोज की ॥
ताहि चितै बड़री अँखियान ते,
ती की चितौनि चलीअति ओज की।
बालम ओर बिलोकि कै बाल,
दई मनो चोट सनाल सरोज की ॥

(७२)

रूप के मंदिर तो मुख मैं,
मनि-दीपक से दृग द्वै अनुकूले।
दर्पन मैं मनि, मीन सलील,
सुधाधर नील सरोज-से फूले ॥
'देव' जू सूरमुखी मृदु फूल के,
भीतर भौंर मनौं भ्रम भूले।
अंक मयंकज के दल पंकज,
पंकज में मनो पंकज फूले ॥

खोज की--दर्शनीय। सनाल सरोज--नालसहित कमल। सुधाधर--चन्द्रमा। सूरजमुखी--फूल। मयंकज--बुध।

(७३)

धार में धाइ धँसी निराधार ह्वै
जाय फँसी उकसीं न अवेरी।
री अँगराइ गिरी गहिरी गहि,
फेरे फिरीं न घिरीं नहिं घेरी॥
'देव' कछू अपनो बसु ना,
रसु लालच लाल चितै भईं चेरी।
वेगिहि बूड़ि गईं पखियाँ,
अँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी॥

(७४)

वानर बीर बसाए अटा,
रँग मन्दिर मैं सुक सारयो चिरैया।
भोर लौं ऊखिल भीर अथायन,
द्वार न कोऊ किवार भिरैया॥
कौलौं घिरे घर मैं रहौं 'देव'
बछा बिछुरे कहौ कौन घिरैया।
फूले न बाग समूले न मूले,
ऊ सूले खरे उर फूले फिरैया॥

धार—प्रेम प्रवाह। निरधार—निरवलम्ब। उकसी—फिर निकलना। अथायन—बैठकों में। घिरे-बैठे रहें। घिरैया—लौटाने वाला।

(७५)

अंबर नील मिली कबरी,
मुकुता-कर दामिनि-सी दसहूँ दिसि।
ता मधि माथे में हीरा गुह्यो,
सुगयो गड़ि केसन को छवि सों लिसि॥
माँग के मूल बनो सिर फूल,
द्व्यौ झमकै कनकावलि सों घिसि।
शृंग सुमेरु मिले रवि-चन्द,
ज्यों पावस मास अमावस की निसि।

(७६)

पहिले सुनि राख्यौ हो भाख्यौ सखी,
रस चाख्यो अचानक कानपुटी।
लखि चित्र-चरित्र लख्यो सपने,
अब तौ खिन आँखिन आँखि जुटी॥
उमग्यो मनु 'देव' लग्यो पुन सों,
गुरु बंधुनि की धन-रासि छुटी।
कुलकानि की गाँठि तें छूटयो हियो,
हिय तें कुल-कानि की गाँठि छुटी॥

अम्बर नील—नीला वस्त्र। कबरी—केश कलाप। लिसि—मि[illegible]
कर। कानपुटी—कानों में। पनुसों—परस।

(७७)

जीब सो ज्ञीवन, जीवन सों धन,
सो धन जीवित नाथ निबोधौ।
या चित की गति ईठ की ईठिलौं,
ईठ की डीठि अनीठ लौं सोधौ॥
या मनमोहन को वह मोहन,
सोहन सुन्दर रूप बिरोधौ।
या जिय मैं पिय मूरति है,
पिय मूरति 'देव' सुमूरति कोधौ॥

(७८)

'देव' मैं सीस बसायौ सनेह कै,
भाल मृगम्मद-बिंदु कै भाख्यौ।
कंचुकी मैं चुपरचौ करि चोवा,
लगाय लियो उर सों अभिलाख्यौ॥
लै मखतूल गुहे गहने,
रस मूरतिवृत सिंगार कै चाख्यौ।
साँवरे-लाल को साँवरौ रूप मैं,
नैननि को कजरा करि राख्यौ॥

सोधो—ठीक करो। बिरोधो—अटकी हुई। कोधी—ओर। मृगम्मद—कस्तूरी।

(७९)

दिना दस यौवन जोवन री,
मरिए पचि होइ चुपै सरिबे न।
सबै जग जानत 'देव' सुहाग की,
संपति भौन रही मरिबे न॥
कहा कियो सौति कहाय कै काहू,
लरौ पिय लोभ तऊ लरिबे न।
असीसन हू को सही करिबे,
न कछू अब मोहि रही करिबे न॥

(८०)

कान्हमई वृषभानु-सुता भई,
प्रीति नई उनई जिय जैसी।
जानै को 'देव' बिकानीसि डोलै,
लगै गुरु लोगन देखे अनैसी॥
ज्यौं ज्यौं सखी बहरावति बातन,
त्यौं त्यौं बकै वह बावरी-ऐसी।
राधिका प्यारी हमारी सौं तू कहि,
कालिह की बेनु बजाई मैं कैसी॥

मरिए पचि--परेशान होना। बिकनो सी डोलै--मुग्ध होकर घूमना। अनैसी--बुरी।

(८१)

ए अपनी करनी किन देखत,
'देव' कहौं न बनाइ कछू मैं।
घायल ह्वै करसायल ज्यौं मृग,
त्यौं उतही अतुरायल घूमैं॥
मेटिबे को तन ताप दुहू भुज,
मेटिबे कौं झपटैं झुकि झूमैं।
चित्र के मन्दिर मित्र तुम्हैं लखि,
चित्र की मूरति को मुख चूमैं॥

(८२)

जीभ कुजाति न नेकु लजाति,
गनैं कुल-जाति न बाति बक्यो करै।
'देव' नयो हिय नेह लगाय,
बिदेह की आँचन देह दह्यो करै॥
जीव अजान न जानत जान,
जो मैन अयान के ध्यान रह्यो करै।
काहे को मेरो कहावत मेरो जु,
पै मन मेरो न मेरो कह्यो करैं॥

करसायल— कृष्णसार मृग। कुजाति—दुष्टा। बिदेह की आँचन—अनंग ताप से। जान— ज्ञान। अयान—मूर्ख।

(८३)

साँसन ही सों समीर गयो,
अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज्ञु गयो गुन लै अपनो,
अरु भूमि गई तनु की तनुता करि॥
'देव' जियै मिलिवे ही की आस,
कि आसहू पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि,
हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि॥

(८४)

आजु गोपालजू बाल बधू सँग,
नूतन नूतन कुंज बसे निसि।
जागर होत उजागर नैनन,
पाग पै पीरी पराग परी पिसि॥
चोज के चन्दन खोज खुले अँग,
ओछे उरोज रहे उर मैं घिसि।
बोलत बात लजात से जात हैं,
आए इतौत चितौत चहूं दिसि।

तेज्ञु—अग्नि। तनुता—सूक्ष्मता। जागर—जगना। उजागर—गट। चोज के—थोड़ा। इतौत—इधर उधर।

(८५)

केसरि सों उबटे सब अंग,
बड़े मुकुतान सों माँग सँवारी।
चारु सुचंपक-हार गरे,
अरु ओछे उरोजन की छबि न्यारी।
हाथ सों हाथ गहे 'कवि देव जू'
साथ निहारे हौं आज निहारी।
हाहा हमारी सौं साँची कहौं,
वह कौन ही छोहरी छीबरवारी॥

(८६)

गौने की चाल चली दुलही,
गुरु नारिन भूपन भेप बनाए।
सील सयान सबै सिखएरु,
सबै सुख सासरेहू के सुनाए॥
बोलियो बोल सदा अति कोमल,
जे मनभावन के मन भाए।
यों सुनि ओछे उरोजन पै,
अनुराग के अंकुर से उठि आए॥

छोहरी—कन्या। छीबरवारी—चूनरी ओढ़े। मनभावन—पति।
अनुराग—प्रेम।

(८७)

रावरे रूप लखा ललचानी ये,
लागी न काहू चितौनि औ ऐसी।
है सतहीन सताई तती तुम,
संगति ते उतरी उत तैसी॥
न्याव निवेरौ न हौ यह नेह कौ,
जानत हौ तुम हूँ हम जैसी।
देखिबे ही कौं भरौ सिसकी,
तिनते रिस की चरचा कहौ कैसी॥

(८८)

बूझैं बड़े बबा नंद को बंस,
जसोमति माय को मायको बूझत।
बोलत बातैं बड़ी बन मैं
मन मैं वृषभानु बबा सौं अरूझत॥
'देव' दबी हम नेह के नात;
न तौ पुरिखा इन बातन बूझत।
जीभ सँभारि न काढ़त गारि हौ,
ग्वारि गँवारि हमें हरि बूझत॥

सतहीन— दुबली। भरौ सिसकी— रोती हो। मायको— नैहर। अरूझत—उलझना। पुरिखा- बड़े बूढ़े।

(८९)

आजु मिले बहुतै दिन भावते,
भेंटत भेंट कछू मुख माखौ।
ये भुजभूषन सो भुज बाँधि,
भुजा भरि कै अधरा-रस चाखौ॥
लीजिए लाल उढ़ाय जरी पट,
कीजिए जू जिय जो अभिलाखौ।
प्यारे हमैं तुम्हैं अंतर पारत,
हार उतारि इतै धरि राखौ॥

(९०)

माखन-सो मन दूध सो जोवन,
है दधि ते अधिकै उर ईठी।
जा छबि आगे छपाकर छाछ,
बिलोकि सुधा बसुधा सब सीठी॥
नैनन नेह चुवै कहि 'देव'
बुझावति वैन वियोग अँगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहो
कहौ क्यों न लगै मनमोहनै मीठी॥

भुजभूषन—बाहु रूपी आभरण। ईठी—इष्ट। छपाकर—चन्द्रमा। छाछ—मठा। सीठी—निस्वाद।

(९१)

पायन नूपुर मंजु बजैं,
कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई ।
साँवरे अंग लसै पट पीत,
हिये हुलसै बनमाल सुहाई ॥
माथे किरीट, बड़े दृग चंचल,
मंद हँसी मुख-चंद जुन्हाई ।
जै जग-मन्दिर-दीपक सुन्दर,
श्री ब्रज दूलह 'देव' सहाई ॥

(९२)

हैं उपजे रज बीज ही ते,
बिनसे हू सबै छिति छार कै छाँड़े ।
एक-से देखु कछू न बिसोक,
ज्यों एक उन्हार कुम्हार के भाँड़े ॥
तापर ऊंच औ नीच बिचारि,
वृथा बकिवाद बढ़ावत चाँड़े ।
वेदनि मूंदि कियो इन दूंदु,
कि सूद्रु अपावन पावन पाँड़े ।

बिसोक—[illegible]। [illegible] उन्हार—एक समान। चाँड़े—अवहेलना करके। दूंदु—[illegible]।

(९३)

जो कछु पुन्य अरन्य जल स्थल,
तीरथ खेत निकेत कहावै ॥
पूजन-जाजन औ तप-दान,
अन्हान परिक्रम गान गनावै ।
और किते व्रत नेम उपास,
आरंभु कै 'देव' को दंभु दिखावै ।
हैं सिगरे परपंच के नाच,
जु पै मन मैं सुचि साँच न आवै ॥

(९४)

पावक मैं बसि आँच लगै न,
बिना छत खाँड़े कि धार पै धावै ॥
मीत सों भीत, अभीत असीत सों,
दुक्खं सुखी सुख मैं दुख पावै ॥
जोगी ह्वै आठहू जाम जगै,
अठ जामिनि कामिनि सौं मनु लावै ।
आगिलो पाछिलो सोचि सबै,
फल कृत्य करै तब भृत्य कहावै ॥

अरन्य बन। खेत—क्षेत्र ।जाजन—यज्ञ करना । उपास—व्रत रहना। दंभ—मिथ्या अभिमान। बिना छत—बिना आघात के खाँड़े की धार—तलवार की धार। फल कृत्य—कार्य सम्पादन करे

(६५)

मात ह्वै आपु जनी जगमात,
　　क्रियो पति तात सुतासुत जायो ।
ता उर माँह रमा ह्वै रमी,
　　बिधि बाम नरायन राम रमायो ॥
लोक तिहूँ जुग चारहु मैं जस,
　　देखौ बिचारि हमारोई गायो ।
जौ हम सीस बसे रजनीस के,
　　तौ यहि ईस लै सीस बसायो ॥

(६६)

अनुराग के रंगनि रूप तरंगनि,
　　अंगनि ओप मनो उफनी ।
'कवि देव' हिये सियरानी सबै,
　　सियरानी को देखि सुहाग सनी ।
वर धामनि वाम चढ़ी बरसैं,
　　मुसुकानि सुधा घनसार घनी ।
सखियान के आनन-इंदुन तें,
　　अँखियान की बंदनवार तनी ॥

जन'—उत्पन्न किया । जगमात - पार्वती । जायो— उत्पन्न किया रमा—लक्ष्मी । रजनीस — चन्द्रमा । ओप कान्ति । प्रभा सियरानी—अभिमान जाता रहा । घनसार—कपूर ।

(६७)

स्याम के अंग सदा हम डोलैं,
जहाँ पिक बोलैं, अलीगन गुंजैं।
लाहनि माह उछाहनि सों,
छहरैं जहँ पीरी पराग की पुंजैं॥
बेलनि मैं, रस केलनि मैं,
'कवि देव' कछू चित की गति लुंजैं।
कालिंदी-कूल महा अनुकूल ते,
फूलतीं मंजुल बंजुल कुंजैं॥

(६८)

रच्यो कच मौर सुमोर पखा,
धरी काक-पखा मुख राखिअराल।
धरी मुरली अधराधर लै,
मुरली सुर लीन ह्वै 'देव' रसाल॥
पितम्बर काछनी पीत पटी,
धरि बालम-बेष बनावति बाल।
उरोजन खोज निवारन को,
उर पैन्ही सरोजमई मृदु माल॥

लाहनि माह—सानन्द। पराग की पुजैं—मकरन्द का समूह। लुजैं—टूट जाना। मञ्जुल—कोमल, सुन्दर। बजुल—अशोक। कच मौर—बालों का मुकुट। अराल—कुटिल। निवारन को—रोकने को।

(९९)

झूलति ना वह झूलनि बाल की,
फूलनि-माल की लाल पटी की।
'देव' कहै लचकै कटि चंचल,
चोरो दृगंचल चाल नटी की॥
अंचल की फहरानि हिए रहि,
जानि पयोधर पीन तटी की।
किंकिनि की झननानि झुलावनि,
झंकनी सों झुकि जानि कटी की॥

(१००)

माधुरी झौरनि फूलनि भौंरनि,
बौरनि-औरनि बेलि बची है।
केसरि किंसु कुसुंभ कुरौ,
किरवार कनैरनि रंग रची है॥
फूले अनारन चंपक-डारनि,
लै कचनारनि नेह तची है।
कोकिल रागनि नूत परागनि,
देखु री, बागनि फागु मची है॥

लचकै—हिलै, काँप जाय। दृगंचल—आँख का पपोटा। भौंरनि-समूह। किंसु—पलाश। किरवार—अन्तिम आरा। नेह तची-प्रेम से प्रतप्त होने के कारण दुखी है। नूत—नये।

(१०१)

साँवरी सुन्दर पीत दुकूल सु,
फूले रसाल की मूल लसंती ।
लीन्हें रसाल की मंजरी हाथ,
सुरंगित आँगी हिये हुलसंती ॥
पूरन प्रेम सुरंग मै प्योधनी,
संग ही संग विलोल हसंती ।
है उत हैउत ही दिन माँझ,
समौ करि राख्यो बसंत बसंती ॥

(१०२)

दूध, सुधा मधु, सिंधु गंभीर ते,
हीरजुपै नग-भीर लै आवै ।
लाल प्रवाल पता मिलिकैं,
मनिमानिक मोतिन जोति जगावै ॥
लै रजनीपति बीच बिरामनि,
दामिनि-दीप समीप दिखावै ।
जो निज न्यारी उज्यारी करै,
तब प्यारी के दंतन की दुति पावै ॥

आँगी कचुकी । सुरंग मैं प्योधनी—स० रे० ग० म० प० ध० नी० । हैउत—हेमन्त ऋतु । हीर—सार । नग भीर—रत्न प्रभा । बिरामनि—विराम चिह्न ।

(१०३)

करि कोरि कला उलटैं पलटैं,
पल ही पल ज्यौं मृग बागरि के।
बहु ताको बिलास बढ़ै चित-चाँस,
पै 'देव' सरूप उजागरि के॥
गति बंक निसंक ही नाच करैं,
गुर डोरि गहे गुन-आगरि के।
तब नेह लग्यो नट नागर सों,
अब नैन भये नटनागरि के॥

(१०४)

पीतम बेस बिलास बिसेख,
सबिभ्रम भौंहनि जोहनि जोऊ।
रूप के भार धरे लघु भूषन,
औ बिपरीत हँसे किन कोऊ॥
मैं रसरास हँसी रिस हू रस,
'देव जू' दुःख सुखौं सम होऊ।
तोहि भटू बनि आवत है,
रस भाव सुभाव में हाव दसोऊ॥

बागरि—लाल। गुर—चुटकुला। जोहनि—देखना।

(१०५)

सोधि सुधारि सुधाधरि 'देव'
रची नख ते सिख सुद्ध ससी-सी।
सोने-से रंग, सलोने-से अंगन,
कौनै न नैन कसौटी कसी सी॥
ही के बुझै सब ही के सँताप,
सु सौतिन को असराप असीसी।
भावती ही हित ही की हितू भई
आवती हीं अँखियानि बसी-सी॥

(१०६)

औचक ही चितई भरि लोचन
वा रस के बस ह्वै चुकी चेरियै।
मोहक मोहू पै हौं नहीं सूझत,
बूझत स्याम घने तम घेरियै॥
आनन्द के मद के नद मैं,
मनु बूड़ि गयो हद मैं नहि हेरियै।
कै उलटो सब लोक लगौ,
किधौं 'देव' करी उलटी मति मेरियै॥

असराप — शाप। असीसी—आशीर्वाद। चेरियै—दासी।

(१०७)

को कुल या व्रजगोकुल दो कुल,

दीप-सिखा-सी ससी-सी रही भरि।

त्यौं न तिन्हैं हरि हेरत री,

रँगराती न जो अँगराती गरे परि ॥

जो नवला नव इन्दु-कला

ज्यौं लची परे प्रेम रची पिय सों लरि।

भेंटत देखि बिसेखि हिए,

व्रजभूभुज 'देव' दुहूँ भुज सों भरि ॥

(१०८)

कंचन के कलसा कुच ऊँचे;

समीपहि मैन-महीप ठयो है ।

बाजी खिलाय कै बाल पनो,

अपनो पन लै सपनो सो भयो है ॥

'देव' कहा कहौं ठाकुर ईठ,

गयो दुरि यों दुरयोग नयो है।

जोबन ऐंठ में पैठत ही,

मनि-मानिक गाँठि ते ऐंठि लियो है ॥

रंगराती--प्रेम से मत्त। अगराती—विषय वासनायुक्त । गरे परि--हठात । व्रजभूभुज--कृष्ण । मैन-महीप--कामदेव । ठयो है--ठहरा है । ठाकुर--स्वामी । दुरयोग—अप्रिय प्रसंग । गाठि ते—गाठ से । ऐंठि लयो है--छीन लिया है ।

(१०९)

जे बिन देखे भये दिन बीति,
नयो पछिताऊ अरो हिए हैए।
'देव जू' देखि उन्हैं हौं दुखी भई,
या जिय को दुख काहि दिखैए॥
देखे बिना दिखसाधन ही मरि,
देखु री देखत ही न अघैए।
देखत-देखत-देखत ही रहो,
आपनी देहौ न देखन पैए॥

(११०)

सुखसार सिवार सरोवर ते,
ससि सीस बँधे बिधि के बल सों।
चकई-चकवा तजि गंग-तरंग,
अनंग के जाल परे छल सों॥
कमलाकर तें कढ़ि कानन में,
कल हंस कलोलत हैं कल सों।
चढ़ि काल के धाम धुजा फहरात,
सुमीनन काम कहा जल सों॥

अरा—अड़ा हुआ। दिखसाधन ही मरि—देखने ही की इच्छा से दुख सहते रहे। सिवार—शैवाल। कमलाकर—सरोवर। कल—सुन्दर।

(१११)

थिर दै चितऊँ जित ओर सखी,
तित नंदकिसोर कि ओर ठई।
दसहू दिसि दूसरी देखति ना
छबि मोहन की छिति माँहि छई॥
'कवि देव' कहाँ लौं कछू कहिए,
प्रतिमूरति हौं उनहीं की भई।
ब्रजबासिन को ब्रज जानि परै,
न भयो ब्रज री ब्रजराजमई॥

(११२)

गोत-गुमान उतै इत प्रीति,
सुचादरि सी अँखियान पै खैंची।
टूटै न कानि दुहू दुखदानि की
'देव जू' हौं दुहु ओर ते ऐंची॥
सील लटो न हियो पलटो,
प्रगटी सुनिरन्तर अन्तर कैंची।
या मन मेरे अनेरे दलाल ह्वै,
हौं नन्दलाल के हाथ लै बैंची॥

ठई—स्थिर। प्रतिमूरति—बिल्कुल वैसी ही तसवीर। गोत गुमान—वंश का गर्व। कानि—मर्यादा। सील लटो—शील के कारण बुरा। अन्तर कैंची—हृदय रूपी कैंची। अनेरे—अनाड़ी।

(११३)

ना यदुनंद को मन्दिर है,
वृषभान को भौन कहा जकती हौ।
हौंहीं कि ह्यॉं तुमहीं 'कवि देव जू'
काहि धौं घूंघट कै तकती हौ॥
भेटती मोहि भटू किहि कारन,
कौन की धौं छवि सों छकती हौ।
कैसी भई हौ कहा किन कैसेहु,
कान्ह कहाँ हैं कहा बकती हौ।

(११४)

आए हौ पैन्हि प्रभात हिए पर,
जानि परे कछु जोति उज्यारी।
आरसी लै किन देखिए 'देव जू'
पाई कहाँ केहि नेह निहारी॥
कै बनमाल किधौं मुक्तावलि,
कंचन की कि रची रतनारी।
स्याम कहूं, कहुँ पीत, कहूँ सित,
लाल कहूं उर-माल तिहारी॥

ह्यॉं—यहाँपर। भटू—सखी। नेह निहारी—प्रेममई देखी है।

(११५)

नातो कहा तुम सों तुम को हौ,
ज़ु कान्ह छुवै कछु अंग न वाकौ।
क्यों छुवै अंग पै देखत हैं,
ज़ु जराऊ तरौना मैं रूप रवा कौ॥
कोने कह्यौ तो विजायठी बाँधन,
यों गिरि जातौ ज़ु डोल झबा कौ।
लाल परे लड़ बावरी बान हौं,
ठेंग गनोंगी न नंद बबा कौ॥

(११६)

प्यारी हमारी सौं आवौ इतै,
'कवि देव' ज़ु प्यारी ह्वै कैसेक ऐए।
प्यारी कहौ मति मोसों अहो,
कहि प्यारी प्यों प्यार की प्यारी बुलैए।
कै वह प्यारु कै एतो कुप्यारु,
औ न्यरी ह्वै वैठि कै वात बनैए॥
प्यारे पराये सों कौन परेखो,
गरे परि कौ लगि प्यारी कहैए॥

तरौना—कर्णफूल। रवा—एक खण्ड। बिजायठी—अंगद। झब—झब्बा। न्यारी ह्वै—अलग अलग। परेखो—उपालंभ। ठेंग गनोंगी—कुछ भी न मानूगी।

(११७)

नेह लगाए निहोरे करावत,
नाहक नाह कहावत जैसे।
साथ के संकत हाथ जरे,
घर कौन बुझावै मिले सब तैसे॥
वाहि न घूंघट की घट की सुधि,
अंग अनंग जरै पजरै-से।
क्यौं न गहै कर तू तिनके,
जिन की करतूतिन के फल ऐसे॥

(११८)

नारि जु वारिज-सी बिकसी रहै,
प्रेमकली पिक-सी कल कूजै।
जा बड़ भाग के भौन बसी,
तेहि पीतम के चलिकै पग छूजै॥
और कहा कहिए तेहि द्वार की,
दासी ह्वै 'देव' उदास न हूजै।
आँखिन को सुख सुन्दरि को,
मुख देखत हू दिखसाध न पूजै॥

निहोरे--विनय। घट की--शरीर की। पजरै--प्रज्वलित। वारिज-सी--कमल-सी। बिकसी--खिली। कल कूजै--चहचहाना, मनोहर गान। दिखसाध--देखने की इच्छा।

(११६)

साँझ ही स्याम को लेन गई,
सुबसी बन में सब जामिनि जाय कै ॥
सीरी बयारि छिदै अधरा,
उरझौं उर झाँखर झार मँझाय कै ।
तेरीसि को करि है करतूति,
हुती करिबे सुकरी तैं बनाय कै ॥
भोर ही आइ भटू इत मो,
दुखदाइनि काज इतो दुख पाइकै ॥

(१२०)

पातरे अङ्ग उड़ै बिन पंखन,
कोयल-बानि च्वानि बिरी की ।
जोबन रूप अनूप निहारि कै,
लाज मरै निधिराज सिरी की ॥
कौल से नैन, कलानिधि-सौ मुख,
कोटि कला गुन की गहिरी की ।
बाँस के सीस अकास पै नाचति,
को न छक्यौ छबि सोनचिरी की ॥

छिदै अधरा--ओठ फट गये। दुखदाइनि काज--दुख देनेवाली के लिये । कोयल बानि-- मीठी बोल । लाज मरै निधिराज सिरी की--लक्ष्मी की राज्यश्री उसके सामने लज्जित हो । सोनचिरी--नटिनी ।

(१२१)

'देव' सुन्यो सब नाटक चाटक,
चाह उचाटन मन्त्र अतंक को।
वै तरुनी त्रिय के दृग-कोर ते,
और नहीं चित-चोर चमंक को॥
घूंघट ओट की आधिक चोट को,
सूल सम्हारै को मूल कलंक को।
बीछी छुवै किन छीछी बिसो वह,
तौ बिसु विस्व वसीकर वंक को॥

(१२२)

काम परयो दुलही अरु दूलह,
चाकर यार ते द्वार ही छूटे।
माया के बाजने बाजि गए,
परभात ही भातखवा उठि बूटे॥
आतसबाजी गई छिन में छुटि,
देखि अजौं उठि कै आँखि फूटे।
'देव' दिखैयन दाग बने रहे,
बाग बने ते बरोठेई लूटे॥

तरुनी त्रिय—जवान औरत। मूल कलक—कलक का उद्गम। छीछी—तुच्छ बेकार। उठि बूटे—चले गये। आंखि फूटे—अंधे से। बरोठेई—पौर में।

(१२३)

तार मृदंग महारव सौं,
भनझारत भाँभन के गन जामें।
गुंजत ढोल कदंबक पुंज,
कुलाहल काहल नादति तामें॥
भेरी घनेरी नरी सुर नारि,
नरीसुर नारि अलापी सभा में।
गाजत मेघ घने सुर लाजत,
बाजत माया के द्वार दमामें॥

(१२४)

हाथ दई यहि काल के ख्याल मैं,
फूल-से फूलि सबै कुम्हिलाने।
'देव' अदेव बली बल-हीन,
चले गये मोद की हौंसहि लाने॥
या जग बीच बचै नहि मीचु पै,
जे उपजे ते मही मैं मिलाने।
रूप, कुरूप, गुनी, निगुनी
जे जहाँ जनमें, ते तहाँई बिलाने॥

कदंबक—समूह। काहल—अप्सरा। नरी सुर—बीन। दमामे—बाजे, नगाड़े। हौंसहि—प्रबल इच्छा।

(१२५)

केसरि किंसुक औ बरना,
कचनारनि की रचना उर सूली।
सेवती 'देव' गुलाब भलै,
मिलि मालती मल्लि मलिंदनि हूली ॥
चंपक दाड़िम नूत महाउर,
पाँडर डार डरावनि फूली।
या मयमंत वसंत मैं चाहत,
कंत चल्यौ हम ही किधौं भूली ॥

(१२६)

आइ खुभी खिरकी मैं खरी,
खिन-ही-खिन खीन सखीन लखाहीं।
चाह भरी उचकै चित चौंकि,
चितै चतुराइ उतै चितचाहीं ॥
बातन ही बहरावति मोहिं,
विमोहत गातन की परछाहीं।
ओढ़ि किए उर एड़ती हौ,
भुज ऐंठि कहूं उड़ि जैहौ तौ नाहीं ॥

बरना - पुष्प विशेष। मलिंदनि—भँवरों की। मयमत—हाथी
खुभी— गड़ी। खिन-ही-खिन —प्रतिक्षण। खीन—दुबली।

(१२७)

आली झुलावति झूकनि सों,
झुकि जात कटी झननाति झकोरे ।
चंचल अंचल की चपला,
चलवेनी बड़ी सी गड़ी चित चोरे ॥
या विधि झूलत देखि गयो
तब ते कविदेव' सनेह के जोरे ।
झूलत है हियरा हरि को
हिय माँह तिहारे हरा के हिंडोरे ।

(१२८)

सीतल, मंद, सुगंध खुलावति,
पौन डुलावति को न लची है ।
नौल गुलावनि कौल फुलावनि,
जोन-कुलावनि प्रेम पची है ॥
मालती, मल्लि, मलंज लवंगनि,
सेवती संग समूह सची है ।
'देव' सुहागनि आजु के भागनि,
देखु री, बागनि फागु मची है ॥

चंचल अंचल—उड़ता हुआ वस्त्र । चलबेनी—हिलती हुई वेणी ।

(१२६)

अंब के बौरन बौरँ बिराजतीं,
मौरसिरी सा धरी सिरमौरी ।
इंदु से सुन्दर गोल कपोलन,
बोल सुनाय करी धिक बौरी ।
सेत दुकूलनि साँमरी बाम की,
पैनी चितौनि चुभै चित दौरी ।
पूरन पुन्य सुराग मैं प्योधनी,
गाइए सीत निसागम गौरी ॥

(१३०)

'देव' न देखति हौं दुति दूसरी,
देखे हैं जा दिन ते ब्रज भूप मैं ।
पूरि रही री वही धुनि कानन,
आनन आन न ओप अनूप मैं ॥
ए अखियाँ सखियाँ न हमारिऐ,
जाय मिली जल बुंद ज्यौं कूप मैं ॥
कोटि उपाय न पाइए फेरि,
समाय गई रँगराय के रूप मैं ॥

सिरमौरी—शिर पर मुकुट । सीत निसागम—जाड़ों की रात्रि का आगमन । गौरी—रागिनी का नाम । ओप—कान्ति, प्रभा । कोटि उपायन—हजारों प्रयत्न ।

(१३१)

कंज सौं आनन-खंजन सौं दृग,
या मन रंजन भूल न कोऊ।
तामरसौं नलिनौं सरसौं अलि,
होय नहीं तब सो चित सोऊ॥
पूरन इन्दु मनोज सरो चित,
ते बिसरो उसरो उन दोऊ॥
'देव' जू ओप किधौं अपमान,
अरे उपमान करौ कवि कोऊ॥

(१३२)

कीच के बीच रहैं चुरियाँ,
फूल- सी उमड़ी तुलसी बन लूनो।
'देव' सिढ़ी जमुना सिढ़ियै चढ़ि,
दीन्हों मनोरथ के हम चूनो॥
बीच खगै खग कंटक ह्वै,
सुतौ कंटक ई नहि आवत ऊनो।
पापनचाव चितै चित की गति,
देहहु के दुख मैं सुख दूनौं॥

तामरसौ—कमल। सरसौ— प्रसन्न हो। उसरो—हट गया। कीच के—कीचड़। चुरियाँ--चूरियाँ। चूनो – चूनौती। खग--पक्षी। आवत ऊनो—नहीं आता।

(१३३)

आई हुती अन्हवावन नायनि,
सोधो लिए कर सूधे सुभायनि।
कंचुकी छोरी उबटैबे को,
ईंगुर से अँग की सुखदायनि॥
'देव' सरूप की राग निहारति,
पाँय ते सीस लौं सीस ते पायनि।
ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी-सी,
हँसै कर ठोढ़ी धरे ठकुरायनि॥

(१३४)

प्यारी सकेत सिधारी सखी संग,
स्याम के काम सँदेसनि के सुख।
सूनी इतै रँग भौन चितै चित,
मौनि रही चकि चौंक चहूँ सुख॥
एकहि बार रही जकि ज्यों कि त्यों
भौंहनि तानिकै मानि महादुख।
'देव' कछू रद बारी दबीरी,
सुहाथ की हाथ रही मुख की मुख॥

अन्हवावत—स्नान कराने। कंचुकी—अँगिया। सकेत निर्दिष्ट स्थान। मौनि रही—चुप रही। रही जकि—अवाक रही।

(१३५)

आँखिन आँखि लगाए रहै,
सुनिए पुनि कानन को सुखकारी।
'देव' रही हिय में घरु कै,
न सकै निसरै बिसरै न बिसारी॥
फूल मैं बास ज्यौं मूल सुबास की,
है फल फूल रही फुलवारी।
प्यारी उज्यारी हिये भरि पूरि ह्वै,
दूरि न जीवन-मूरि हमारी॥

(१३६)

पीर सही घर ही में रही,
'कवि देव' दियो नहि दूतनि को दुख।
काहुक बात कही न सुनी,
मनु मारि बिसारि दियौ सिगरौ सुख॥
भीर में भूलि कहूँ सखि मैं,
जब ते ब्रजराज कि ओर कियो रुख।
सोहि भट्ट तब ते निसि-द्यौस,
चितौतिहि जात चवाइन के मुख॥

जीवन-मूरि—रहने का स्थान। चवाइन—बदनामी करने वाले

(१३७)

स्याम सरूप घटा ज्यौं अनूपम,
नीलपटा तन राधे के भूमै ।
राधे के अँग के रंग रँग्यो,
पट बीजुरी ज्यौं घन सो तन-भूमै ॥
है प्रतिमूरति दोऊ दुहू की,
बिधो प्रतिबिंब वही घट दूमै ।
एकहि 'देव' दुदेह दुदेहरे,
देव दुधा यक देह दुहू मैं ॥

(१३८)

जाल बुलाई हौ को हैं वे लाल,
न जानती हौ तौ सुखी रहिबो करि ।
री सुख काहे को देखे बिना,
दिखसाधन ही जियरा न परो जरि ॥
'देव' तौ जान अजान क्यौं होति,
यही सुनि आँसुन नैन लिए भरि ।
साँचे बुलाई बुलावन आई,
हहा काहि मोहि कहा करिहैं हरि ॥

अनूपम—अपूर्व, सुन्दर । दूमै—हिलैं । दिखसाधन—देखने की इच्छा । अजान—अज्ञा ।

(१३९)

अरिकै यह आजु अकेले गई,
खरिकै हरि के गुन रूप लुही ।
उनहूँ अपनो पहिराय हरा,
मुसक्यायकै गायकै गया दुही ॥
'कवि देव' कहा किन कोई कहू,
तब ते उनके अनुराग छुही
सब ही सों यहै कहै बाल-बधू,
यह देखु री माल गुपाल गुही ।

(१४०)

सूधेहु नैन लखे न तबै,
अब पैए कहाँ जब चाहत हेरो ।
कान करे नहिं कान तबै,
तकि कान लगे अकुलान घनेरो ॥
लाजहिं जाइ मिले उनपै,
इत मोहि मिले मग भेटत मेरो ।
भेटौं मनोरथ हौं इनको तौ,
मिटै मन मेरे मनोरथ तेरो ॥

अरिकै—हठ करके । खरिकै—पशुशाला को । अनुराग—प्रेम

(१४१)

पून्यो प्रकास उदो उकसाइ कै,
आसहू पास बसाइ अमावस ।
दै गए चित मैं सोच-विचार,
सु लै गए नींद छुधा बल बावस ॥
है उत 'देव' बसंत सदा,
इत है उत है हिम-कंप महा वस ।
दै सिसिरो निसि ग्रीषम के दिन,
आँखिन राखि गए रितु पावस ॥

(१४२)

'देव' जुपै चिति चाहिए नाह,
तौ नेह निबाहिए देह मर्यौ परै ।
त्यों समुझाय सुझाइए राह,
अमारग जो पग धोखे धर्यौ परै ॥
नीके मैं फीके ह्वै आँसू भरौ कत,
ऊँचौ उसास गरौ क्यों भर्यो परै ।
रावरो रूप पियो अँखियान,
भर्यो सुभर्यो उभर्यो सुढर्यो परै ॥

उदो - उदय। ब बस--हठात । अमारग —बुरे रास्ते पर ।
रावरो—आपका । उभर्यो—निकला ।

(१४३)

रावरे पायन ओट लसै पग,
गूजरी वार महावर ढारे ।
सारी असावरी की झलकै,
छलकै छबि घाँघरे घूम घुमारे ॥
आओ जू आओ दुराओ न मोहूं सों,
'देव जू' चंद दुरै न अँध्यारे ।
देखौं हौं कौनसी छैल छिपाई,
तिरीछ हंसै वह पीछे तिहारे ।

(१४४)

ओठन ते उठि पीठि पै वैठि,
कंधान पै ऐंठि मुरयो मुख मोरनि ।
'देव' कटाच्छन ते कढ़ि कोप,
लिलार चढ़्यो बढ़ि भौंह मरोरनि ॥
अंक में आये मयंकमुखी लई,
लाल को बंक चितै दृग-कोरनि ।
आँसुन बूड़्यो उसायो उद्यो किधौं,
मान गयो हिलकी की हिलोरनि ॥

गूजरी—अहीरनी व्रजवासिनी ।

(१४५)

बैठी कहा धरि मौन भटू,
रँग भौन तुम्हैं बिन लागत सूनौ।
चातक लौं तुमहीं रटि 'देव'
चकोर भयो चिनगी करि चूनौ॥
साँझ सुहाग की माँझ उदै करि,
सौति सरोजन को वन लूनौ।
पावस ते उठि कीजिए चैत,
अमावस से उठि कीजियै पूनौ॥

(१४६)

आई हौं देखि बधू इक 'देव'
सुदेखतै भूलीं सबै सुधि मेरी।
राख्यो न रूप कछू बिधि के घर,
ल्याई है लूटि लुनाई की ढेरी॥
येई अबै वहि ऐसे है बैस,
मरैगी हराहरु घूंटि घनेरी।
जे-जे गनी गुन-आगरि नागरि,
ह्वै है ते वाके चितौत ही चेरी॥

मौन—चुपचाप रंग भौन—केलि मन्दिर। लुनाई की ढेरी—सुन्दरता की ढेरी। हराहरु—भयकर विष। चितौत ही—देखते ही।

(१४७)

कैधौं हमारियै बार बड़ौ भयो,
कै रवि को रथ ठौर ठयो है।
भोर ते भाल की ओर चितौति,
घरी पल हू गन तो न गयो है॥
आवत छोर नहीं छिन को,
दिन को नहिं तीसरो याम छयो है।
पाइये कैसेक साँझ तुरंतहि,
देखु री दौस दुरंत भयो है॥

(१४८)

खोरि में खेलत पीठि दिए,
तऊ नेह की डीठि छुटै नहिं छूठी।
'देव' दुहूँ को दुहू छल पायो,
सु कौलमुखी लखै नौल वधूटी॥
क्यौं बिसरै निसरै मनते,
व्रज जीवन की निजु जीवन-बूटी
बाल के लाल लई चिहुँटी,
रिस के मिस लाल सौं बाल चिहूंटी॥

ठयो है—रुक गया है। दुरंत—कठिन जिसका अन्त न हो। खोरि—गली। कौलमुखी—कमल वदनी। नौल वधूटी—नई दुलहिन। बसरै—भूलै। व्रज जीवन—कृष्ण। चिहुंटी—चिकोटी काटना। चिहूंटी—चिपट गई।

(१४९)

ज्यों बिन ही गुन अंक लिखै घुन,
यों करि कै करता कर झारयो ।
वारिए कोरि सची रति रानी,
इतो खतरानी को रूप निहारयौ ॥
'देव' सुबानक देखि अचानक;
आनकहूँन को आनक मारयो ।
लाल लचै तिय आन रचै,
तौ पचै बिन काज बिरंचि बिचारयो ।

(१५०)

'देव जू' या मन मेरे गयंद को,
गैनि रहीं दुख गाढ़ि महा है ।
प्रेम पुरातन मारग बीच,
टकी अटकी दृग सैल-सिला है ॥
औंधी उसास नदी अँसुवान की,
बूड़यो बटोही चलै बलुका ह्वै ।
साहुनी ह्वै चित चोति रही,
अरु पाहुनी ह्वै गई नींद बिदा ह्वै ॥

करता—ब्रह्मा । कर झारयो—हाथ फटकार डाले । वारिए—निछावरि कीजिए । कोरि—खोद कर । सुबानक—अच्छा रूप बनाकर ।

(१५१)

तिल है अमोल लोल-नैनी के कपोल गोल,
बोलत अमोल जन वारि फेरियत है।
सोभा सुनी जाकी 'कविदेव' कहै कौन को न,
होत चित चीकनो चतुर चेरियत है॥
घाट बाट हू में घट निपट बटोहिन के,
नेक हू निहारे नेह-भरे हेरियत है।
सरस निदान ताके दरस की कौन कहै,
पौन हू के परस परोसी पैरियत है॥

(१५२)

कंसरिपु अंस अवतारी जदुवंस कोइ,
कान्ह सों परमहंस कहै तो कहा सरो।
हम तो निहारे ते निहारे ब्रजबासिन मैं,
'देव' मुनि जाको पचि हारे निसी-बासरो॥
श्रम न हमारे जप संजम न करैं कछू,
बहि गयो जोग जमुना-जल बिलासरो॥
गोकुल गोसायनि परम सुख-दायनि,
श्रीराधा ठकुरायनि के पायनि को आसरो॥

लोल-नैन—चचल नेत्री , पचि हारे—परेशान हो गये।

(१५३)

ऊधो आए, ऊधो आए, स्यामको सँदेसो लाए,
सुनि गोपी-गोप धाए धीर न धरत हैं।
पौरी लगि दौरी उठि भौंरी लौं भ्रमति मति,
गनति न ताऊ गुरु लोगनि डरति हैं॥
ह्वै गई बिकल बाल बालम-बियोग भरीं,
जोग की सुनत बात गात यों जरत हैं।
भारी भए भूषन सँभारे न परत अंग,
आगे को धरत पग पाछे को परत हैं।

(१५४)

उज्ज्वल उज्यारी-सी झलमलाति झीनी सारी,
झाँई-सी दिपति देह-दीपति बिसाल-सी।
जोबन की जोतिन, सों, हीरालाल मोतिन सों,
नख ते सिखा लौं मिलि एकै ह्वै महा लसी॥
बोलनि हँसनि मंद चलनि चितौनि चारु—
ताई चतुराई चित चोरिबे की चाल-सी।
संग मैं सहेली सोन बेली-नवेली बाल,
रँगमगे अंग जगमगति मसाल-सी॥

भौंरी - भ्रमरी। झीनी—बारीक। सोन बेल- सी—स्वर्ण बेल की तरह। जगमगति-- झिलमिलाती हुई।

(१५५)

मोहिं तुम्हैं अंतरु गनैं न गुरुजन, तुम,
मेरे; हौं तुम्हारी, पै तऊ न पिघलत हौ।
पूरि रहे या तन मैं, मन मैं न आवत हौ,
पंच पूंछि देखे कहूं काहू ना हिलत हौ॥
ऊँचे चढ़ि रोई, कोई देत न दिखाई 'देव'
गातनि की ओट बैठे बातन गिलत हौ।
ऐसे निरमोही सदा मो ही मैं बसत, अरु,
मोही ते निकरि फेरि मोहीं न मिलत हौ॥

(१५६)

जागी न जुन्हाई ज्वाल लागी है मनोभव की,
लोक तीनों हिये। हेरि-हेरि हहरत है।
बारि पर परे जलजात जरि बरि-बरि,
बारिधि ते बाड़व अनल परसत है॥
धरनि ते लाइ झरि छूटी नभ-जाइ; कहैं,
'देव' जाहि जोवत जगत हू जरत है।
तारे अनगारे-ऐसे चमकत चहूं ओर,
वैरी बिधु मंडल भभूका-सो बरत है॥

पिघलत द्रवित होना। गिलत—लीलना। मनोभव कामदेव। जलजात कमल। बारिधि—समुद्र। बाड़व-अनल—एक प्रकार की अग्नि जो समुद्र में रहती है।

(१५७)

चरननि चूमि, छवै छवानि ह्वै चकित 'देव'
झुमिकै दुकूल न घूमि करि घटि गयो ।
कोरे कर कमल करेरे कुच कंदुकनि,
खेलि खेलि कोमल कपोलननि पटि गयो ॥
ऐसो मन मचला अचल अंग अंग पर,
लालच के काज लोक-लाजहि ते हटि गयो ।
लटि मैं लटकि लोइननि मैं उलटि करि,
त्रिवली पलटि कटि-तटी माहिं कटि गयो ॥

(१५८)

नैननि मैं ठाढ़ेई सुनावैं श्रवननि बैन,
बैन बसैं रसना हिए हू परसी मरौं ।
देखौं न सुनौं बैन न बोलति मिलौं, न बिनु,
देखि-सुनि बोलि-मिलि आँसु बरसी मरौं ॥
देखत दुखित सुनि सूखति बिलाति बोल,
मिलेहू मलिन ह्वै कै लाज सरसी मरौं ।
एते पर देखिबे को, सुनिबे को बोलिबे को,
'देव' हिये खोलि मिलिबे को तरसी मरौं ॥

छवानि—बिछुआ । दुकूलनि—वस्त्र । रसना—जिह्वा । बिलाति—गली जाती है ।

(१५६)

कैसी कुल बधू, कुल कैसो, कुलबधू कौन,
तूहै, यह कौन पूछै काहु कुलटाहि री ।
कहा भयो तोहि कहा काहि तोहि मोहि कीधौं,
कीधौं और काहू और कहा न तौ काहि री ॥
जाति ही सों जाति को है जाति कैसे जाति, एरी,
तोसों हौं रिसाति, मेरी मोसों नरिसाहि री ।
लाज गहु, लाज गहू लाज गहिबे ते रही,
पंच हंसिहैं री, हौं तौ पंचन ते बाहरी ॥

(१६०)

एकै अभिलाख लाख-लाख भाँति लेखियत,
देखियत दूसरो न 'देव' चराचर मैं ।
जासों मनु राँचै तासों तनु-मनु राचै, रुचि,
भरि कै उघरि जाँचै साँचै करि कर मैं ।
पांचन के आगे आँच लागे ते न लौटि जाय,
साँच देइ प्यारे की सती लौं वैठि सर मैं ।
प्रेम सों कहत कोई ठाकुर न ऐंठौ सुनि,
वैठौ गाढ़ि गहिरे तौ पैठो प्र-म-घर मैं ॥

कुलबधू—सदवंश की स्त्री । कुलटानि—चरित्रहीन स्त्री । लाज गहु—लज्जा करो । पंचन ते बाहर—जाति से बाहर । रांचै—अच्छा लगे । सर—तालाब ।

(१६१)

पीछे परबीनें बीनें संग की सहेली आगे,
भार डर भूषन डगर डारै छोरि-छोरि।
मोरै मुख मोरनि औ चौंकति चकोरनि त्यों,
भौंरनि की भीर भीरु देखै मुख मोरि-मोरि॥
एकै कर आली कर ऊपर ही धरे, हरे-
हरे पग धरै 'देव' चलै चित चोरि-चोरि।
दूजे हाथ साथ लै सुनावति बचन, राज,
हंसनि चुनावति मुकुत-माल तोरि-तोरि॥

(१६२)

जगमगी जोतिन जड़ाऊ मन-मोतिन की;
चंद-मुख मंडल पै मंडित किनारी-सी।
बेंदी बर बीरन गहीर नग हीरन की,
'देव' झमकनि में झमक भीर-भारी सी।
अंग अंग उमड्यो परत रूप रंग नव—
जोबन अनूपम उज्यास न उज्यारी-सी।
डगर-डगर बगरावति अगर अंग,
जगरमगर आपु आवति दिवारी-सी॥

भीरु—डरी हुई। मुकुत-माल—मोती का माला। गहीर—गहिरी। उज्यास—प्रकाश उजाला। बगरावति—बिखेरती हुई।

(१६३)

फलि-फलि फूलि-फूलि फैलि-फैलि झुकि-झुकि;
झपकि-झपकि आई कुंजै चहुँ कोद ते।
हिल-मिल हेलिन कै केलिन करन गई,
वेलिन बिलोकि वधू ब्रज की विनोद ते।
नंद जू की पौरि पर ठाढ़े हैं रसिक 'देव'
मोहन जू मोहि लीनी मोहिनी वे मोद ते।
गाथन सुनत भूली साथन के फूल गिरे,
हाथन के हाथ ते, गोदन के गोद ते,॥

(१६४)

आई बरसाने ते, बुलाई वृषभानु-सुता,
निरखि प्रभान प्रभा भानु की अथै गई।
चक्र-चक्रवान को चुकाइ चक्र चोटन सों,
चकित चकोर चकचौंधी-सी चकै गई॥
नंदजू के नंदन के नैननि अनंदमयी,
नंदजु के मंदिरन चंदमयी छै गई।
कंजन कलिनमयी कुंजन अलिनमयी,
गोकुल की गलिन नलिनमई कै गई॥

हेलनि—पुकारना। केलिन—विहार। प्रभान—कान्ति को।
चन्दमयी—प्रकाशमयी नलिनमई—कमलिनियो से युक्त।

(१६५)

घूँघट खुलत अबै उलट ह्वै जैहै 'देव'
उद्धत मनोज जग युद्ध जूटि परैगो।
ऐसी न सुरोक सिख को कहै अलोक बात,
लोक तिहुँ लोक की लुनाई लूटि परैगो॥
दैयन दुरावै दुख नतरु तरैयन को,
मंडलहु मटकि चटकि टूटि परैगो।
वो चितै सकोचि सोचिमोचि मृदु मूरछि-कै,
छोर ते छपाकर छता सी छूटि परैगो॥

(१६६)

फूँकि फूँकि मन्त्र मुरली के मुखजंत्र कीन्हों,
प्रेम परतंत्र लोक लीक ते डुलाई है।
तजे पति मात तात गात न सँभारे कुल,
बधू अधरात बन भूमिन भुलाई है॥
नाच्यो जो फनिंद इन्द्रजालिक गोपाल गुन,
गारुड़ी सिंगार रूपकला अकुलाई है।
कीलि कीलि लाज दृग मीलि-मीलि काढ़ी कान्ह,
कीलिह कीलिह ब्यालिनी सी ग्वालिनी झुलाई है॥

मनोज—काम। अलोक—अपूर्व। तरैयन—तारे। छपाकर—चन्द्रमा। लोक लीक—बंश मर्यादा। इन्द्रजालिक—जादूगर। ब्यालिनी—सर्पिणी।

(१६७)

पावस प्रथम ऐबे की अवधि सों जो.
आवत ही आवै बुलाऊँ अति आदरनि।
नाहीं तौ न हील दे रे भील झाबरनि,
ग्रीषमहिं राखु खाली भाखु खल खादरनि।
बीजुरी बाजु, कहु मेघ न गरजु,
इन गाजमोर मोर मुख मोरी री निरादरनि।
कंठ रोकि कोकिलनि, चोंच नोच चातकनि,
दूरि करि दादुर, विदा करि री बादरनि॥

(१६८)

उर सों लगी ही वधू बिधुर अधर चूम,
मधुर सुधान बातैं सुनिबे सुभाव की।
बोलि उठीं कोकिला त्यों काकलिनु कलित,
कलापिन की कूकैं कल कोमल बिराव की॥
आइ गईं झूकैं मंद मारुत की 'देव' नव,
मल्लिका मिलित मल पदुम के दाव की।
ऊखली सुबासु गृह अखिल खिलन लागीं,
पलिका के आस-पास कलिका गुलाब की॥

झाबरनि—जलाशय। बिदा करि री—हटा दे। काकलिनु-मधुर ध्वनि। बिराव की—चहचहाहट। अखिल—सम्पूर्ण।

(१६९)

गूढ़ वन सैल बूढ़े बैल को गहाई गैल,
भूतन चुरैल छैल छाके छवि ओज के।
भंग के न रंग दें भगीरथ को गंग हत,
मग कटा राखत न राख तन खोज के।
'देव' न वियोगी अब योगी ते सँयोगी भए,
भोगी भोग अंक परजंक चितचोज के।
व्याल गज-खाल मुंड-माल औ डमरु डारि,
ह्वै रहे भ्रमर मुख सुन्दर सरोज के॥

(१७०)

एक होत इन्द्र, एक सूरज औ चन्द्र, एक,
होत है कुबेर कछु बेर देत नाया के।
अकुल कुलीन होत, पामर प्रबीन होत,
दीन होत चक्कवै चलत छत्र छाया के॥
संपति-समृद्धि, सिद्धि-निद्ध, बुद्धि वृद्धि सब,
भुक्ति मुक्ति पीर पर परि प्रभु जाया के।
एक ही कृपा-कटाच्छ कोटि यच्छ रच्छ नर,
पावैं घर बार दरबार देव माया के॥

गहाई गैल—रास्ते पर लाया। परजंक—पलंग। पामर—नीच। चक्कवै—चक्रवर्ती। प्रभु जाया—लक्ष्मी।

(१७१)

कथा मैं न, कंथा मैं न, तीरथ के पंथा मैं न,
पोथी मैं, न पाथ मैं, न साथ की बसीति मैं।
जटा मैं न, मुंडन न, तिलक त्रिपुंडन न,
नदी-कूप-कुंडन अन्हात दान-रीति मैं॥
पीठ-मठ-मंडल न, कुंडल कमंडल न,
माला-दंड मैं न, 'देव' देहरे की भीति मैं।
आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो,
पाइए प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं॥

(१७२)

राखी न कलप तीनों काल विकलप मेटि,
कीनो संकलप, पै न दीनों जाचकनि जोखि।
नाग, नर 'देव'-महिमा गनत नंद जू की,
माँगन जु आयो, सो न आँगन ते गयो रोखि॥
दए सब सुख, गए बंदी न बिमुख देव,
पितर अनन्दी भए नंदीमुख-मख पोखि।
घरनि-घरनि सुर-घरनि सराहैं सबै,
धरनि मैं धन्य नंदधरनि तिहारी कोखि॥

देहरे—देवस्थान। प्रतीति—विवास। जोखि—जाँच कर। सो न आँगन ते गयो रोखि—कोई मंगता विमुख नहीं गया। नदी मुख—मख—श्राद्ध विशेष। पोखि—पालन करके। सुर—घरनि—देवांगनायें।

(१७३)

मोर मुकुट कटि पीत पटु कस्यौ, कैसी,
केसावलि ऊपर बदन सरदिन्दु के।
सुन्दर कपोलन पै कुंडल हलत सुर,
मुरली मधुर मिले हाँसी रस विन्दु के॥
माँगती सुहाग नाग-सुन्दरी मराहि भागु,
जोरे कर सरन चरन अरविन्दु के।
किंकिनी रटनि ताल ताननि तननि 'देव',
नाचत गुविंद फन फननि फनिन्दु के॥

(१७४)

उज्जल अखंड खंड सातएँ महल महा—
मंडल सँवारो चंद-मंडल को चोट ही।
भीतर ही लालनि के जालनि बिसाल जोति,
बाहर जुन्हाई जगी जोतिन की जोट ही॥
बरनति बानी चौर डारति भवानी कर,
जोरे रमा रानी ठाढ़ी रमन की ओट ही।
'देव' दिगपालनि की देवी सुखदायनि ते,
राधा ठकुरायनि के पायन पलोटही॥

केसावलि—केशपाश। सरदिंदु—शरद ऋतु का चन्द्रमा। नाग-सुन्दरी—नागांगनायें। रटनि—झन्कार। फनिन्दु—सर्प। चोट ही—बढ़ कर। बानी—सरस्वती। रमा रानी—लक्ष्मी।

(१७५)

आस-पास पूरन प्रकास के पगार सूझैं,
बनन अगार डीठ गली ह्वै निबरते।
पारावार पारद अपार दसौं दिसि बूड़ीं,
विधु बरम्हंड उतरात विधि बरते॥
सारद जुन्हाई जह्नु पूरन सरूप धाई,
जाई सुधासिंधु नभ दिसि गिरि बर ते।
उमड़ो परत जोति मंडल अखंड सुधा,
मंडल मही में इन्दु-मण्डल बिवरते॥

(१७६)

सोंखे सिन्धु सिन्धुर से, बंधुर ज्यौं विंध्य, गंध-
मादन के बंधु से गरज गुरबानि के।
झमकारे झूमत गगन को घूमत,
पुकार मुख चूमत पपीहा मोरवानि के॥
नदी-नद सागर डगर मिलि गए 'देव'
डगर न सूझत नगर पुरवानि के।
भारे जल-धरनि अँध्यारे धरनी-धरनि,
धाराधर धावत घुमरि घुरवानि के॥

पगार—उथली नदी। पारद—पारा। अखंड—सम्पूर्ण। सोंखे—सोख रहे हैं। सिंधुर—हाथी। गंध मादन—पर्वत का नाम। धर—बादल। घुरवानि—वर्षा की फुहार।

कालिंदी के कूलनि तरुनि तरु-मूलनि,
निहारि हरि अंग के दुकूलनि उघेरतीं।
मल्ली मलै मालती नेवारी जाती जूही 'देव'
अंब-कुल बकुल कदंबन में हेरतीं॥
लाल दै दै तालनि तमालनि मिलत फिरैं,
बोलि-बोलि बाल भुज भेंटि भट भेरवीं।
पुलकि-पुलकि पुलिननि मैं पुलोमजा सो,
बिलपि बिलोकि कान्ह-कान्ह करि टेरतीं॥

उमगत आवत सुधा-जल-जलधि पल,
घरी उघरत मुख अमिय मयूख सों
'देव' दुहूँ बैस मिलि रूप अधिकायो, मधु,
मेलि दधि दूधहि मिलायो रस ऊख सो॥
छाई छबि छहरि लुनाई का-लहरि लह-
रान्यो रसमूल ह्वै रसाल सुर-रुख-सो।
पीवत ही जात दिन-राति तिन तोरि तोरि,
खिन-खिन सखिन की आँखिन पिऊख-सो॥

नीचे को निहारति नगीचे नैन अधर,
दुबीचे दब्यो स्यामा अरुनाभा अठकन को।
नील मनि भाग ह्वै पदुमराग ह्वै कै,
पुखराग ह्वै रहत बिध्यो व्है निकट कन को।

कालिंदी—यमुना। कूलनि—किनारों पर। दुकूलनि—वस्त्र। बकुल—मौलसिरी। पुलिननि—रेत में। पुलोमजा—इन्द्राणी। अमिय मयूख—अमृतमयी किरणें। तिन तोरि तोरि—डीठ न लगने का टोना। नगीचे—निकट।

'देवजू' हँसत दुति दंतन मुकुत जोति,
बिमल मुकत हीरा लाल गटकन को।
थिरकि-थिरकि थिरु थाने पर तान लेगि,
बाने बदलत नट मोती लटकन को ॥१७६॥

सरद के बारिद में इन्दु सो लसत 'देव'
सुन्दर वदन चाँदनी सो चारु चीर है।
सोधो सुधा-बिंदु मकरंद-सी मुकुत-माल,
लपटी मनोज तरु-मंजरी सरीर है॥
सील-भरी सलज्ज सलोनी मृदु मुसुकानि,
राजै राजहंसगति गुनत गहीर है॥
घेरी चहुँ ओरन तें भौंरन की भीर, तामैं,
ए री चित्त चोरनि चकोरनि की भीर है॥

काम-गिरि-कुंडते उठति धूम-सिखा कै,
चटक-चरनाली सारदा में पीत पंक की।
तनक तनक अंक-पाँति ज्यों कनक-पत्र,
बाचत ससंक लंक लीनी रीति रंक की॥
सूछम उदर मैं उदार निरै नाभी-कूप,
निकसति तातो ततो पातक अंतक की।
रंचक चितौत चित-बंचक चढ़ावै दोष, रोम-
रेखा चौथि-सोम-रेखा ज्यों कलंक की।१८१॥

मकरंद—पुष्परेणु। मनोज—कामदेव। रचक—थोड़ा। बंचक—धोखा देनेवाला। चौथि-सोम रेखा—भादों सुदी चौथ का चन्द्रमा।

जाके मद मात्यौ सो उमात्यौ ना कहूँ है कोई,
बूड़्यो उछल्यौ ना तर्‌यों सोभा-सिंधु सामुहै।
पीवत ही जाहि कोई मर्‌यो, सो अमर भयौ;
बौरान्यौ जगत जान्यौ मान्यौ सुख-धामु है॥
चख के चसक भरि चाखत ही जाहि फिरि,
चाख्यो ना पियुष कछू ऐसो अभिरामु है।
दम्पति सरूप ब्रज औतर्‌यो अनूप सोई,
'देव' कियो देखि प्रेम रस प्रेम नामु है॥

साँझ़को-सो चंद भोर को-सो करि राख्यो मुख,
भोर की-सी कांति भाँति साँझ की-सी भई आनि।
साँझ भोर कोसो, नभ देखिये मलीन मन,
साँझ भोर चकवा चकोर की सी हित हानि॥
कैसे करि कोसौं कासौं कहौ कैसी करौं 'देव'
कीनी रिपुकेसी कैसे केसी की सुकैसी बानि।
कैसी लाज कैसो काज कैसो धौं सखी समाज
कैसौ घरु कैसौ बरु कैसौ डरु कैसी कानि॥

बैठी सीस-मन्दिर मैं सुन्दरि सवार ही की,
मूँदि कै केवार 'देव' छवि सों छकति है।
पीत-पट लकुट मुकुट बनमाल धारि,
भेष करि पी को प्रतिबिंब मैं तकति है॥

चसक—मद्य का प्याला। रिपुकेसी—कृष्ण। बानि—आदत। कानि—मर्यादा। सीस-मन्दिर—शीशमहल। सवार—भोर ही से।

होति न निसंक उर अंक भरि भेंटिबे को,
भुजन पसारति समेंटति जकति है।
चौंकति चकात उचकति चितवति चहूं,
भूमि ललचाति मुख चूमि न सकति है॥१८४॥
दुहू मुख चन्द ओर चितवैं चकोर, दोऊ,
चितै-चितै चौगुनो चितैबो ललचात हैं।
हासनि हँसत बिन हाँसी बिहसत मिले,
गातनि सों गात बात बातनि मैं बात हैं।
प्यारे तन प्यारी पेखि पेखि प्यारी पिय तन;
पियत न खात नेक हूँ न अनखात हैं।
देखि ना थकत देखि-देखि ना सकत 'देव'
देखिबे की घात देखि-देखि न अघात हैं॥

औचक अगाध सिन्धु स्याही को उमड़ि आयो;
तामैं तीनों लोक बूड़ि गए एक संग मैं।
कार कारे आखर लिखे जू कारे कागर;
सुन्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चित भंग मैं॥
आँखिन मैं तिमिर अमावस की रैनि जिमि;
जंबुरस-बुंद जमुना-जल-तरंग मैं।
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई;
स्यामरंग ह्वै करि समान्यो स्याम रंग मैं।१८६।

जकति—चौंकता। अनखात—बुरा लगना। आखर—अक्षर। तिमिर—अंधकार। रैनि—रात्रि।

केलि के बगीचे लौं अकेली अकुलाय आई;
नागरि नवेली बेली हेरत हहरि परी।
कुंज-पुंज तीर तहँ गुंजत भँवर-भीर
सुखद समीर सीरे नीर की नहरि परी॥
देव' तेही काल गूँथिल्याई माल मालिनि, सो
देखत बिरह-बिष-व्याल की लहरि परी।
छोह-भरी छरी-सी छबीलीं छिति मोहि फूल-
छरी के छुअत फूल-छरी-सी छहरि परी॥

इभ से भिरत चहुँधाई सौं घिरत घन,
आवत झिरत झीने झरसों झपकि-झपकि।
सोरन मचावैं नचैं मोरन की पाँति चहुँ,
ओरन तें कौंधि जाति चपला लपकि-लपकि॥
बिन प्रानप्यारे प्रान न्यारे होत 'देव' कहै
नैन बरूनीन रहे अँसुवा टपकि-टपकि।
रतियाँ अँधेरी, धीर न तिया धरति मुख
बतिया कढ़ै न उठै छतियाँ तपकि-तपकि॥

मोहि मैं छिपे हो माहि छूवावत न छाहौं तापै,
छाँह भए डोलत इते पै मोहि छरिहै।।
मच्छ सुनि कच्छप बराह नरसिंह सुनि,
बावन परसुराम रावन के अरि हौ॥

भँवर-भीर— भ्रमरावली। बिरह-विष व्याल—विरह रूपी विषैला नाग। इभ— हाथी। चपला—बिजली। बरुनीनि—आँख की पलकें। छरिहौ- छलोगे।

'देव' बलदेव देव दानव न पावै भेद,
को हौ जू कहौ जू जो हिये की पीर हरिहौ।
कहत पुकारे प्रभु करुना-निधान कान्ह,
कान मूंदि बौध ह्वै कलंकी काहि करिहौ॥

कुंजनि के कोरे मन केलि रस बोरे लाल,
तालन के खोरे बाल आवति है नित को।
अमिय निचोरे कल बोलति निहोरे नेक,
सखिन के डोरे 'देव' डोलै जित तित को॥
थोरे-थोरे जोबन बिथोरे देत रुप-रासि,
गोरे मुख भोरे हँसि जोरे लेति हित को।
तोरे लेति रति दुति मोरे लेति गति-मति,
छोरे लेति लोक-लाज चोरे लेतिचित को॥

खरी दुपहरी हरी भरी फरी कुंज मंजु,
गुंज अलि पुंजनि की 'देव' हियो हरि जाति।
सीरे नद-नीर तरु सीतल गहीर छाँह,
सोवैं परे पथिक पुकारै पिकी करि जात॥
ऐसे मैं किसोरी भोरी कोरी कुम्हिलाने मुख,
पंकज से पाँय धरा धीरज सों जरि जाति।
सोहैं घनस्याम मग हेरति हँथेरी ओट
ऊँचे धाम बाम चढ़ी आवति उतरि जाति॥१६१

नेक—[illegible]। निहोरे--खुशामद करने से। डोरे--साथ। तोरे लेत रति दुति—कामागना की शोभा की विडम्बना करती है। अलि-पुंजनि—भ्रमरावली। गहीर—घनी। सोहैं--सामने।

जौं न जीमैं प्रेम तब कीजै ब्रत-नेम, जब,
कंज-मुख भूलै तब संजम बिसेखिए ।
आस नहीं पीकी तब आसन ही बाँधियत,
सासन कै सासन को मूँदि पति पेखिये॥
नख ते सिख लौं सब स्याममई बाम भई
बाहर लौं भीतर न दूजो 'देव' देखिये ।
जोग करि मिलै जो बियोग होय बालम जू;
ह्याँ न हरि होंय तब ध्यान धरि देखिये ॥

जोबन के रंग भरी ईंगुर-से अंगनि पैं,
एड़िन लौं आँगी छाजै छबिन की भीर की ।
उचके उचौहैं कुच झपे झलकत झीनी,
झिलिमिली ओढ़नी किनारीदार चीर की ॥
गुलगुले गोरे गोल कोमल कपोल, सुधा-
बिंदुबोल इन्दु-मुखी नासिका ज्यों कीर की ।
'देव' दुति लहरात छूटे छहरात केस,
बोरी जैसे केसर किसोरी कसमीर की ॥

लागी प्रेम-डोरि खोरि साँकरी ह्वै कढ़ी आनि,
नेह सों निहारि जोरि आली मन मानती ।
उतते उताल 'देव' आए नंदलाल, इत
सोहैं भई बाल नव लाल सुख सानती ॥

पेखिये — देखिये । स्याममई — कृष्णमयी । इन्दु-मुखी—चन्द्र-वदनी । कीर की—तोते की । उताल—जल्दी ।

कान्ह कह्यो टेरि कै कहाँ ते आई, को हो तुम,
लागती हमारे जान कोई पहिचानती ।
प्यारी कह्यो फेरि मुख हेरि जू चलेई जाहु,
हमैं तुम जानत तुम्हैं हु हम जानती ॥

गोकुल नरिन्द्र इन्द्रजाल सो जुटाय ब्रज-
बालनि छुटाय कै छुटाय लाज-दामु सों ।
बिज्जुलि से बास अंग उज्जल अकास करि,
बिबिध बिलास रस हास अभिरामु सो ।
जान्यो नहीं जात, पहिचान्यो न बिलात, रास-
मंडल ते स्याम, भासमंडल ते धामु सों ।
बाहनि के जोट काम कंचन के कोट गयो,
ओट ह्वै दमोदर दुरोदर को दामु सों ।

फूलि उठो वृन्दावन, भूलि उठे खग, मृग,
सूलि उठे उर बिरहागि बगराई है ।
गुंजरे करत अलि-पुंज कुंज-कुंज धुनि,
मंजु पिक-पुंज नूत मंजुरी सुहाई है ॥
बाल बनमाल फूल-माल बिकसत बिह-
संत सुखी ब्रज मैं वसंत-ऋतु आई है ।
नंद केनन्दन ब्रजचन्द को बदन देखे,
सदन-सदन 'देव' मदन दुहाई है ॥ १६

लाजु-दामु—लाज की माला । अभिरामु- बिना रुके हुए । भासमंडल—प्रभा मंडल । दुरोदर को दामु—जुआँ । बगराई—बखेर दिया । सदन—घर मदन—कामदेव ।

उतैं तौ सघन घन घिरि कै गगन, इतै,
वन-उपवन बन बनक बनाए हैं।
तैसेई उलहि आए अंकुर हरित-पीत,
'देव' कहैं विविध बटोहिन सुहाए हैं॥
बोलैं इत-मोर उत गरजैं मधुर धुनि,
मानौं मैन-भूप जग जीति घर आए हैं।
अंबर बिराजैं वर अम्बरन छाये छिति,
पीरे हरे लाल ये जवाहिर बिछाये हैं॥

अरुन उदोत सकरुन ह्वै अरुन नैन,
तरुन-तरुन तन तूमत फिरत हैं।
कुंज-कुंज केलि कै नवेली बाल बेलिन सों
नायक पवन बन भूमत फिरत हैं॥
अंबु-कुल बकुल समीड़ि पीड़ी पाड़रनि
मल्लिकानि मीड़ी घन घूमत फिरतै हैं।
द्रुमन-द्रुमन दल झूमत मधुप 'देव'
सुमन-सुमन मुख चूमत फिरत हैं।१६८॥

ऐसो जु हौं जानतो कि जैहै तू बिषै के संग,
एरे मन मेरे हाथ पाँय तेरे तोरतो।
आजु लौं हौं केते नरनाहन की नाही सुनि,
नेह सों निहारि हेरि बदन निहोरतो॥

मैन-भूप—कामदेव। मधुप—भ्रमर। नरनाहन—राजाओं को।

चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चेतावनीन मारि मुँह मोरतो।
भरो प्रेम-पाथर नगारो दै, गरे सों बाँधि,
राधावर-बिरद के बारिधि में बोरतो ॥१९९॥

कोयल अलापी कुल नाचत कलापी ताल
बोलत बिसाल बोल चातक सुनायौ है।
दामिनीन बीच उपबीत गुन पीतपट,
मोतिनि को हार बग-पाँति मन भायौ है।
फूले मुख लोयन कमल कमलाकर,
मुकुट रवि जोति ताप बरपि सिरायौ है।
मोहै धुनि सरगमै बरषा पहर चौथे'
मेघ तनस्याम घनस्याम बनि आयौ है।२००॥

कंत बिन बासर-बसंत लागे अंतक से,
तीर ऐसे त्रिबिध समीर लगे लहकन।
सान-धरे सार-से चंदन घनसार लागे,
खेद लागे खेर, मृगमद लागे महकन॥
फाँसी-से फुलेल लागे, गाँसी-से गुलाब अरु,
गाज अरगजा लागे चोवा लागे चहकन।
अंग-अंग आगि-ऐसे केसरि के नीर लागे,
चीर लागे जरन, अबीर लागे दहकन॥२०१॥

नगारो दै—डंका बजाकर। बारिधि—समुद्र। उपबीत—जनेऊ। बग-पाँति - बगुलों की कतार। कमलाकर—सरोवर। बासर—दिन। अंतक—यमराज। अरगजा—गुलाब जल में घिसा खस, चन्दन, कपूर।

भाग सुहाग भरी अनुराग सों,
राधे जू मोहन को मुख जोवैं ।
भूषन भेष बनावैं नये नित,
सौतिन के चित बाँछित खोवैं ॥
रोधन गोधन पुञ्ज चरौ पय,
दास दुहैं दधि दासी बिलोवैं ।
पूरन काम ह्वै आठहू जाम,
जु स्याम की सेज सदा सुख सोवैं ॥ २०२ ॥
डोलति है यह काम लता सु,
लचीं कुच गुच्छ दुरूह उधा की ।
कौल सनाल कि बाल के हाथ,
छिपी कटि कान्ति की भाँति सुधा की ॥
'देव' यही मन आवति है,
सविलासु वधू विधि है बसुधा की ।
भाल गुही मुक्तालर माल,
सुधाधर में मनौं धार सुधा की ॥ २०३ ॥
सब हीं के मनों मृग वागुर में,
दृग मीनन को गुन जाल लिये ।
बसुधा सुखसिन्धु सुधारस पूरनु,
जात चले ब्रज की गलियें ॥

अनुराग— प्रेम । जोवै—देखै । चित बाछित—मनचाहा हुआ । बिलोवैं—मथै । भाल—माथा । सुधाधर—चन्द्रमा । वागुर—रस्सी, बन्धन ।

'कवि देव कहैं इहि भाँति उठी,
कहि काहु की कोई कहूँ अलियें।
तबलौं सब ही यह सोरु परौ,
कि चलौ चलिये जू चलौ चलियें॥ २०४॥

जा दिन ते ब्रजनाथ भटू,
इह गोकुल तें मथुराहि गए हैं।
छाकि रही तब तें छवि सों छिन,
छूटति ना छतिया मैं छए हैं॥
वैसिय भाँति निहारति हौं हरि,
नाचत कालिन्दी-कूल ठये हैं।
शत्रु सँहारि के छत्र धर्यो सिर,
देखत द्वारिकानाथ भये हैं॥२०५।

बाल बिलोकत ही भलकी सी,
गुपाल गरै जलबिन्दु की मालैं।
आपुस मैं मुसक्यानि सखी,
'हरि देव जू' बातें बनाईं बिसालैं॥
साँप ज्यों पौन गिलै उगिलै,
विषयों रवि ऊषम आनि उगालैं।
जात घुस्यो घर ही में बने,
तपछोनु भयो तनुघाम के घालै॥२०६॥

अलिये—सखियाँ। भटू—सखी। कूल—किनारा। शत्रु सँहारि बैरियों का बध करके। जलबिन्दु की मालैं—श्रम सीकर का समूह। बिसालै—बड़ी बड़ी।

एक तुही वृषभान सुता अरु,
तीनि हैं वे जु समेत सची हैं।
औरन केतिक राजन के,
कविराजन की रसनायैं तची हैं॥
देवी रमा 'कवि देव' उमा ये,
त्रिलोक में रूप की रासि मची हैं।
पै वर नारि महा सुकुमारि,
ये चारि बिरञ्चि बिचारि रचीं हैं ॥२०७॥
गुन गौरि कियो गुरुमान सु मैन,
लला के हिये लहराइ उठ्यो।
मनुहारि के हारि सखी गुन औरँग,
भौंनहिं ते भहराइ उठ्यो॥
तब लौं चहुँधाई घटा छहराइ कैं,
बिज्जु छटा छहराइ उठ्यो।
'कवि देव जू' भाग ते भामती कौ,
भय तें हियरा हहराइ उठ्यो ॥२०८॥
बैठी बहू गुरु लोगनि में,
लखि लाल गये करिके कछु औल्यो।
ना चितई न भई तिय चंचल,
'देव' इते उनतें चितु डोल्यो॥

सची—इन्द्राणी। रसनायैं—जीभें। बिरञ्चि—ब्रह्मा। भामती की घी का। चितई—देखा।

चातुर आतुर जानि उन्हैं,
छल ही छल चाहि सखीन सों बोल्यो ।
त्योंही निसङ्क मयङ्क-मुखी,
दृग मूँदि कै घूंघट को पट खोल्यो ।२०६॥

बेली नवेली लतानि सों केलि के,
प्रात अन्हाइ सरोवर पावन ।
पिंजर मंजर का छहराइ,
रजच्छवि छाइ छपाइ छपावन ॥
सीतल मन्द सुगन्ध महा,
बपुरे बिहरी बपुरी नित पावन ।
आजु को आयो समीर सखीरी,
सरोज कँपाइ करेजो कँपावन ॥२१०॥

'देव' यहै दिन राति कहै हरि
कैसेहुं राधे सों बात कहैबी ।
केलि के कुंज अकेली मिलै,
कबहूं भरि कै भुज भेटिन पैबी ॥
आठहु सिद्धि नवौनिधि की निधि,
है बिरचौ विधि सन्निधि ऐबी ।
मेटि बियोग समेटि हियो,
भरि मैंट कबै मुखचन्द चितैबी ॥२११॥

आतुर—जल्दी करने वाली । निसङ्क—बेखटके । मयङ्कमुखी—चन्द्रवदनी । बपुरे—तुच्छ । समीर—हवा । केलि के कुंज—विहार स्थली, लताग्रहों का समूह । सन्निधि—निकट ।

आयो बसन्त लग्यो बरसाउन,
नैननि तें सरिता उमहै री ।
कौ लगि जीव छिपावै छपा मैं,
छपाकर की छवि छाइ रहै री ॥
चंदन सों छिरकैं छतियाँ,
अति आगि उठै दुख कौन सहैरी ।
'देव जू' सीतल मन्द सुगन्ध,
सुगन्ध बहौ लगि देह दहै री ॥२१२॥
देखिबे कों जिनको दिन राति,
रहे उर में अति आतुर ह्वै हरि ।
कोटि उपाइन पाइये जे न,
रहे जिनके बिरहाज्वर सों जरि ॥
पार न पैयत आनद कौ तिन,
आनि भटू उठि भेंटे भुजा भरि ।
जानि परै नहिं 'देव' दया,
बिष देत मिली बिषया जु मया करि ॥२१३॥
बोली लसैं बिलसैं नव पल्लव,
फूल खिलैं न खिलैं नव कोरे ।
मोरत मान कों गान अलीनि के,
कूक पिकी सुनि कौ मन मोरे ॥

उमहै री — उमड़ कर बहने लगे । छपाकर—चन्द्रमा । सुगन्ध बहौ—हवा । बिलसैं—शोभायमान हों । पिकी—पपीहा ।

डोलत पौन सुगन्ध चलै अरु,
मैन के बान सुगन्ध कों डोरे।
चंचल नैननि सों तरुनी अरु,
नैन कटाछन सों चितु चोरे ॥२१४॥
को हमकों तुमसे तपसी बिनु,
जोग सिखावन आइ है ऊधौ।
पै यह पूछियै जू उनको सुधि,
पाछिली आवति है कबहूँ धौ ॥
एक भली भई भूप भये अरु,
भूलि गये दधि माखन दूधौ।
कूबरी सी अति सूधी बधू को,
मिल्यो बर 'देव जू' स्याम सौ सूधौ ॥२१५॥
बड़ भागिन येई बिरंचि रची न,
इतौ सुख आन कहूँ तिय के।
बिछुरे न छिनौ भरि बालम तें,
'कवि देव जू' संग रहैं जिय के ॥
तृन चारु चरै रुचि सों चहुँ ओर,
चलै चितवै सुचि सों हिय के।
सब तें सब भाँति भली हरिनी,
निसिबासर पास रहै पिय के ॥२१६॥

तरुनी—युवा स्त्री। चितवै—देखे।

चैन के ऐन ये नैन निहारत,
मैन के को कर मैं न परै री ।
तापर नैसिक अञ्जन देत,
निरञ्जन हू के हिये कों हरै री ॥
साधुऔ होइ असाधु कहूँ,
'कवि देव' जो कारे के संग परै री ।
स्याही रह्यो अरु स्याह सुतौ,
सखी आठहू जाम कुकाम करै री ॥२२७॥
बाल कों न्योति बुलाइबे कों,
बरसाने लों हौं पठई नन्दरानी ।
श्री वृषभान की संपति देखि,
थकी अति ही गति औ मति बानी ॥
भूलि फिरी मनि मन्दिर मैं,
प्रतिबिंबन देखि विशेष भुलानी ।
चारि घरी लों चितौत चितौत,
मरू करि चन्द्रमुखी पहिचानी ॥२२८॥
मोहि लई हिरनी लखि कै हरि
नीरज सी बड़री अँखियान सों ।
सारिका, सारिसिका, रसिका,
सुकपोत कपोती पिकी मृदुबानि सों ॥

निहारति—देखते हैं । नैसिक—थोड़ा । निरञ्जन—कृष्ण । मरू करि—कठिनता से । नीरज सी—कमल सी । रसिका-रसीली । पिकी—पपीहा ।

'देव' कहै सब भूपसुता-
अनुरूप, अनूपम रूप कलानि सों ।
गोपवधू से सुख की घन,
सुन्दर हेरि हरी मुसक्यानि सों ॥२१६॥

ये अखियाँ बिनु काजर कारी,
अन्यारी चितै चित में चपटीसी ।
मीठी लगैं बतियाँ मुख सीठी,
यों सौतनि के उर मैं दपटीसी ॥
अङ्ग हू राग बिना अँग अङ्ग,
झकोरैं सुगन्ध की झपटी सी ।
प्यारी तिहारी ये एड़ी लसै,
बिन जावक पावक की लपटी सी ॥२२०॥

कौन के होइ नहीं मैं हुलास,
सुजात सबै दुख देखत ही दवि ।
जाहि लखैं निलखैं यह भाँति,
परैं मनु सौति सरोजन पै पवि ॥
याही तें प्यारी तिहारी मुखद्युति,
चन्द समान बखानत हैं कवि ।
आनन ओप मलीन न होति,
पैछाहिहै जाति छपाकर की छवि ॥२२१॥

अन्यारी—नुकीली । अङ्ग हू राग—उबटन । जावक—महावर । नहीं मैं—हृदय में । पवि—वज्र । मुखद्युति—आनन की शोभा । झीनि—मंद, पतली । छपाकर की छवि—चन्द्र की शोभा ।

प्यारी के प्रान समेत पियो,
परदेस पयान की बात चलावै।
'देव जू' छोभ समेत छपा,
छतियाँ में छपाकर की छबि छावै।
बोलि अली बन बीच बसंत को,
मीचु समेत नगीच बतावै।
काम के तीर समेत समीर,
सरीर में लागत पीर बढ़ावै ॥२२२॥

मालती सों मलिये निस द्योस हू,
या सुखदानि ह्वै ज्यों समुझैयै।
प्रीति पुरानी पुरैनि कै रैनि,
रहो नियरे न बिपंचि बहैयै॥
ऊपर ही गुन रूप अनूप
निरन्तर अन्तर मैं पतियैयै।
ये अलि कूलह भूलेहु 'देव जू'
चम्पक फूल के मूल न जैये ॥२२३॥

श्रीवृषभान कुमारी के रूप की,
न्यारी कै को उपमा उपजावै।
चंचल नैन कै मैन के बान,
कि खञ्जन मीनन कोई बतावै॥

समीर—हवा। पुरैन—कमल। पतियैयै—विश्वास कीजिये।
न्यारी—अलग।

आनँद सों विहसाति जबै;
　'कविदेव' तबै बहुधा मन धावै।
कै मुख कैधौं कलाधर है,
　इतनो निहच्योई नहीं चित आवै ॥२२४॥
तेरी सी बेनी है स्याम अमाउस,
　तेरीयो बेनी है स्याम अमा सी।
पूरनमासी सी तू उजरी,
　अरु तोसी उजारी है पूरनमासी ॥
तेरौ सो आनन चंद लसै,
　तुअ आनन मैं सखी चंद समा सी।
तोसी बधू रमणीय रमा,
　'कविदेव' है तू रमणीय रमा सी ॥२२५॥
द्वार तें दूरि करौं बहु बारनि,
　हारनि बाँधि मृनालनि मारो।
छाड़तु ना अपनो अपराधु,
　असाधु सुभाइ अगाधु निहारो ॥
बैरनि मेरी हँसै सिगरी
　जब पाँइ परे सुटरै नहिं टारो।
ऐसे अनीठि सों ईठ कहै,
　यह दीठि बसीठ नहीं को बिगारो ॥२२६॥

निहच्योई—दृढ़ निश्चय।